ग्रंथकार

शेष स्मृतियाँ

लेखक

रघुबीरसिंह, डी० लिट्०

आचार्य-प्रवर

पं० रामचन्द्र जी शुक्ल लिखित

"प्रवेशिका" सहित

१९५१

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : बम्बई

जिनकी

अब स्मृति-मात्र शेष है

उन्हीं

मेरी पूज्या स्वर्गीया जननी की

उस शेष स्मृति को

ये

"शेष स्मृतियाँ"

सादर सस्नेह समर्पित

विषय सूची

प्रवेशिका

प्रवेशिका

अतीत की स्मृति में मनुष्य के लिए स्वाभाविक आकर्षण है। अर्थ-परायण लाख कहा करें कि 'गड़े मुरदे उखाड़ने से क्या फ़ायदा' पर हृदय नहीं मानता, बार बार अतीत की ओर जाया करता है; अपनी यह बुरी आदत नहीं छोड़ता। इसमें कुछ रहस्य अवश्य है। हृदय के लिए अतीत मुक्ति-लोक है जहाँ वह अनेक बन्धनों से छूटा रहता है और अपने शुद्ध रूप में विचरता है। वर्त्तमान हमें अन्धा बनाए रहता है; अतीत बीच बीच में हमारी आँखें खोलता रहता है। मैं तो समझता हूँ कि जीवन का नित्य स्वरूप दिखाने वाला दर्पण मनुष्य के पीछे रहता है; आगे तो बराबर खिसकता हुआ परदा रहता है। बीती बिसारने वाले 'आगे की सुध' रखने का दावा किया करें, परिणाम अशान्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं। वर्त्तमान को सँभालने और आगे की सुध रखने का डंका पीटने वाले संसार में जितने ही अधिक होते जाते हैं संघशक्ति के प्रभाव से जीवन की उलझनें उतनी ही बढ़ती जाती हैं। बीती बिसारने का अभिप्राय है जीवन की अखंडता और व्यापकता की अनुभूति का विसर्जन, सहृदयता और भावुकता का भंग—केवल अर्थ की निष्ठुर क्रीड़ा।

कुशल यही है कि जिनका दिल सही सलामत है, जिनका हृदय मारा नहीं गया है, उनकी दृष्टि अतीत की ओर जाती है। क्यों जाती है, क्या करने जाती है, यह बताते नहीं बनता। अतीत कल्पना का लोक है, एक प्रकार का स्वप्नलोक है, इसमें तो सन्देह नहीं। अतः यदि कल्पनालोक के सब खंडों को सुखपूर्ण मान लें तब तो प्रश्न टेढ़ा नहीं रह जाता; झट से कहा जा सकता है कि वह सुख प्राप्त करने

जाती है। पर मेरी समझ में अतीत की ओर मुड़ मुड़ कर देखने की प्रवृत्ति सुख-दुःख की भावना से परे है। स्मृतियाँ मुझे केवल "सुख-पूर्ण दिनों के भग्नावशेष" नहीं समझ पड़तीं। वे हमें लीन करती हैं, हमारा मर्म स्पर्श करती हैं, बस, हम इतना ही कह सकते हैं।

जैसे अपने व्यक्तिगत अतीत जीवन की मधुर स्मृति मनुष्य में होती है वैसे ही समष्टि रूप में अतीत नर-जीवन की भी एक प्रकार की स्मृत्याभास कल्पना होती है जो इतिहास के संकेत पर जगती है। इसकी मार्मिकता भी निज के अतीत जीवन की स्मृति की मार्मिकता के समान ही होती है। नर-जीवन की चिरकाल से चली आती हुई अखंड परम्परा के साथ तादात्म्य की यह भावना आत्मा के शुद्ध स्वरूप की नित्यता और असीमता का आभास देती है। यह स्मृति-स्वरूपा कल्पना कभी कभी प्रत्यभिज्ञान का भी रूप धारण करती है। जैसे प्रसंग उठने पर इतिहास द्वारा ज्ञात किसी घटना के ब्योरों को कहीं बैठे बैठे हम मन में लाया करते हैं, वैसे ही किसी इतिहास-प्रसिद्ध स्थल पर पहुँचने पर हमारी कल्पना या मूर्त्त भावना चट उस स्थल पर की किसी मार्मिक घटना के अथवा उससे सम्बन्ध रखने वाले कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों के बीच हमें पहुँचा देती है जहाँ से फिर हम वर्त्तमान की ओर लौट कर कहने लगते हैं--'यह वही स्थल है जो कभी सजावट से जगमगाता था, जहाँ अमुक सम्राट् सभासदों के बीच सिंहासन पर बिराजते थे; यह वही द्वार है जहाँ अमुक राजपूत वीर अपूर्व पराक्रम के साथ लड़ा था' इत्यादि। इस प्रकार हम उस काल से लेकर इस काल तक अपनी सत्ता के आरोप का अनुभव करते हैं।

अतीत की कल्पना स्मृति की सी सजीवता प्राप्त करके अवसर पाकर प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप धारण कर सकती है जिसका आधार या तो आप्त शब्द (इतिहास) अथवा अनुमान होता है। अतीत की यह स्मृति-स्वरूपा कल्पना कितनी मधुर, कितनी मार्मिक और कितनी

लीन करने वाली होती है, सहृदयों से न छिपा है, न छिपाते बनता है। मनुष्य की अन्तःप्रकृति पर इसका प्रबल प्रभाव स्पष्ट है। हृदय रखने वाले इसका प्रभाव, इसकी सजीवता अस्वीकृत नहीं कर सकते। इस प्रभाव का, इस सजीवता का, मूल है सत्य। सत्य से अनुप्राणित होने के कारण ही कल्पना स्मृति और प्रत्यभिज्ञान का सा सजीव रूप प्राप्त करती है। कल्पना के इस स्वरूप की सत्यमूलक सजीवता का अनुभव करके ही संस्कृत के पुराने कवि अपने महाकाव्य और नाटक किसी इतिहास-पुराण के वृत्त का आधार ले कर ही रचा करते थे।

सत्य से यहाँ अभिप्राय केवल वस्तुतः घटित वृत्त ही नहीं निश्चयात्मकता से प्रतीत वृत्त भी है। जो बात इतिहासों में प्रसिद्ध चली आ रही है वह यदि प्रमाणों से पुष्ट भी न हो तो भी लोगों के विश्वास के बल पर उक्त प्रकार की स्मृति-स्वरूपा कल्पना का आधार हो जाती है। आवश्यक होता है इस बात का पूर्ण विश्वास कि इस प्रकार की घटना इस स्थल पर हुई थी। यदि ऐसा विश्वास कुछ विरुद्ध प्रमाण उपस्थित होने पर विचलित हो जायगा तो इस रूप की कल्पना न जगेगी। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि आप्त वचन या इतिहास के संकेत पर चलने वाली मूर्त्त भावना भी अनुमान का सहारा लेती है। कभी कभी तो शुद्ध अनुमिति ही मूर्त्त भावना का परिचालन करती है। यदि किसी अपरिचित प्रदेश में भी किसी विस्तृत खंडहर पर हम जा बैठें तो इस अनुमान के बल पर ही कि यहाँ कभी अच्छी वस्ती थी, हम प्रत्यभिज्ञान के ढंग पर इस प्रकार की कल्पना में प्रवृत्त हो जाते हैं कि 'यह वही स्थल है जहाँ कभी पुराने मित्रों की मंडली जमती थी, रमणियों का हास-विलास होता था, वालकों का क्रीड़ा-कलरव सुनाई पड़ता था' इत्यादि। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रत्यभिज्ञान-स्वरूपा यह कोरी अनुमानाश्रित कल्पना भी सत्यमूल होती है। वर्त्तमान समाज का चित्र सामने लाने वाले उपन्यास भी अनुमानाश्रित होने के कारण सत्यमूल होते हैं।

हमारे लिए व्यक्त सत्य हैं जगत् और जीवन। इन्हीं के अन्तर्भूत रूप-व्यापार हमारे हृदय पर मार्मिक प्रभाव डालकर हमारे भावों का प्रवर्त्तन करते हैं; इन्हीं रूप-व्यापारों के भीतर हम भगवान् की कल्पना का साक्षात्कार करते हैं, इन्हीं का सूत्र पकड़ कर हमारी भावना भगवान् तक पहुँचती है। जगत् और जीवन के ये रूप-व्यापार अनन्त हैं। कल्पना द्वारा उपस्थित कोई रूप-व्यापार जब इनके मेल में होता है तब इन्हीं में से एक प्रतीत होता है, अतः ऐसा काव्य सत्य के अन्तर्गत होता है। उसी का गम्भीर प्रभाव पड़ता है। वही हमारे मर्म का स्पर्श करता है। कल्पना की जो कोरी उड़ान इस प्रकार सत्य पर आश्रित नहीं वह हलके मनोरंजन की वस्तु है; उसका प्रभाव केवल बेल-बूटे या नक़्क़ाशी का-सा होता है, मार्मिक नहीं।

हमारा भारतीय इतिहास न जाने कितने मार्मिक वृत्तों से भरा पड़ा है। मैं बहुत दिनों से इस आसरे में था कि सच्ची ऐतिहासिक कल्पना वाले प्रतिभा-सम्पन्न कवि और लेखक हमारे वर्त्तमान हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में प्रकट हों। किसी काल की सच्ची ऐतिहासिक कल्पना प्राप्त करने के लिए उस काल से सम्बन्ध रखने वाली सारी उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री की छान-बीन अपेक्षित होती है। ऐसी छान-बीन कोरे विद्वान् तो करते ही रहते हैं पर उसकी सहायता से किसी काल का जीता-जागता सच्चा चित्र वे ही खड़ा कर सकते हैं जिनकी प्रतिभा काल का मोटा परदा पार करके अतीत का एक-एक ब्योरा झलका देती है। आसरा देखते-देखते स्वर्गीय 'प्रसाद' जी के नाटक सामने आए जिनमें प्राचीन भारत की बहुत-कुछ मधुर झलक मिली। उनके देहावसान के कुछ दिन पूर्व मैंने उपन्यासों के रूप में भी ऐसी झाँकी दिखाने का अनुरोध उनसे किया था जो उनके मन में बैठ भी गया था।

नाटकों के रूप में ऐतिहासिक कल्पना का अतीत-प्रदर्शक विधान

देखने पर भावात्मक प्रबन्धों के रूप में स्मृति-स्वरूपा या प्रत्यभिज्ञान-स्वरूपा कल्पना का प्रवर्त्तन देखने की लालसा, जो पहले से मन में लिपटी चली आती थी प्रबल हो उठी। किधर से यह लालसा पूरी होगी, यह देख ही रहा था कि, 'ताजमहल' और 'एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ' नामक दो गद्य-प्रबन्ध देखने में आए। दोनों के लेखक थे महाराजकुमार श्री रघुबीरसिंहजी। आशा ने एक आधार पाया। उक्त दोनों प्रबन्धों में जिस प्रतिभा के दर्शन हुए उसके स्वरूप को समझने का प्रयत्न मैं करने लगा। पहली बात मुझे यह दिखाई पड़ी कि महाराजकुमार की दृष्टि उस कालखंड के भीतर रमी है जो भारतीय इतिहास में 'मध्यकाल' कहलाता है। आपकी कल्पना और भावना को जगाने वाले उस काल के कुछ स्मारक चिह्न हैं, यह देख कर इसका भी आभास मिला कि आपकी कल्पना किस ढंग की है। जान पड़ा कि वह स्मृति-स्वरूपा है, जिसकी मार्मिकता के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। महाराजकुमार ऐसे इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् के हृदय में ऐसा भाव-सागर लहराते देख मैं तृप्त हो गया। विद्वत्ता और भावुकता का ऐसा योग संसार में अत्यन्त विरल है।

प्रस्तुत संग्रह का नाम है "शेष स्मृतियाँ"। इसमें महाराजकुमार के पाँच भावात्मक निबन्ध हैं जिनके लक्ष्य हैं---ताजमहल, फ़तहपुर सीकरी, आगरे का क़िला, लाहौर की तीन (जहाँगीर, नूरजहाँ और अनारकली की) क़ब्रें और दिल्ली का क़िला। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये पाँचों स्थान जिस प्रकार मुग़ल-सम्राटों के ऐश्वर्य, विभूति, प्रताप, आमोद-प्रमोद और भोग-विलास के स्मारक हैं उसी प्रकार उनके अवसाद, विषाद, नैराश्य और घोर पतन के। मनुष्य की ऐश्वर्य, विभूति, सुख और सौंदर्य की वासना अभिव्यक्त होकर जगत् के किसी छोटे या बड़े खंड को अपने रंग में रँग कर मानुषी सजीवता प्रदान करती है। देखते-देखते काल उस

हमारे लिए व्यक्त सत्य हैं जगत् और जीवन। इन्हीं के अन्तर्भूत रूप-व्यापार हमारे हृदय पर मार्मिक प्रभाव डालकर हमारे भावों का प्रवर्त्तन करते हैं; इन्हीं रूप-व्यापारों के भीतर हम भगवान् की कल्पना का साक्षात्कार करते हैं, इन्हीं का सूत्र पकड़ कर हमारी भावना भगवान् तक पहुँचती है। जगत् और जीवन के ये रूप-व्यापार अनन्त हैं। कल्पना द्वारा उपस्थित कोई रूप-व्यापार जब इनके मेल में होता है तब इन्हीं में से एक प्रतीत होता है, अतः ऐसा काव्य सत्य के अन्तर्गत होता है। उसी का गम्भीर प्रभाव पड़ता है। वही हमारे मर्म का स्पर्श करता है। कल्पना की जो कोरी उड़ान इस प्रकार सत्य पर आश्रित नहीं वह हलके मनोरंजन की वस्तु है; उसका प्रभाव केवल बेल-बूटे या नक़्क़ाशी का-सा होता है, मार्मिक नहीं।

हमारा भारतीय इतिहास न जाने कितने मार्मिक वृत्तों से भरा पड़ा है। मैं बहुत दिनों से इस आसरे में था कि सच्ची ऐतिहासिक कल्पना वाले प्रतिभा-सम्पन्न कवि और लेखक हमारे वर्त्तमान हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में प्रकट हों। किसी काल की सच्ची ऐतिहासिक कल्पना प्राप्त करने के लिए उस काल से सम्बन्ध रखने वाली सारी उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री की छान-बीन अपेक्षित होती है। ऐसी छान-बीन कोरे विद्वान् तो करते ही रहते हैं पर उसकी सहायता से किसी काल का जीता-जागता सच्चा चित्र वे ही खड़ा कर सकते हैं जिनकी प्रतिभा काल का मोटा परदा पार करके अतीत का एक-एक ब्योरा झलका देती है। आसरा देखते-देखते स्वर्गीय 'प्रसाद' जी के नाटक सामने आए जिनमें प्राचीन भारत की बहुत-कुछ मधुर झलक मिली। उनके देहावसान के कुछ दिन पूर्व मैंने उपन्यासों के रूप में भी ऐसी झाँकी दिखाने का अनुरोध उनसे किया था जो उनके मन में बैठ भी गया था।

नाटकों के रूप में ऐतिहासिक कल्पना का अतीत-प्रदर्शक विधान

देखने पर भावात्मक प्रबन्धों के रूप में स्मृति-स्वरूपा या प्रत्यभिज्ञान-स्वरूपा कल्पना का प्रवर्त्तन देखने की लालसा, जो पहले से मन में लिपटी चली आती थी प्रबल हो उठी। किधर से यह लालसा पूरी होगी, यह देख ही रहा था कि, 'ताजमहल' और 'एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ' नामक दो गद्य-प्रबन्ध देखने में आए। दोनों के लेखक थे महाराजकुमार श्री रघुबीरसिंहजी। आशा ने एक आधार पाया। उक्त दोनों प्रबन्धों में जिस प्रतिभा के दर्शन हुए उसके स्वरूप को समझने का प्रयत्न मैं करने लगा। पहली बात मुझे यह दिखाई पड़ी कि महाराजकुमार की दृष्टि उस कालखंड के भीतर रमी है जो भारतीय इतिहास में 'मध्यकाल' कहलाता है। आपकी कल्पना और भावना को जगाने वाले उस काल के कुछ स्मारक चिह्न हैं, यह देख कर इसका भी आभास मिला कि आपकी कल्पना किस ढंग की है। जान पड़ा कि वह स्मृति-स्वरूपा है, जिसकी मार्मिकता के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। महाराजकुमार ऐसे इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् के हृदय में ऐसा भाव-सागर लहराते देख मैं तृप्त हो गया। विद्वत्ता और भावुकता का ऐसा योग संसार में अत्यन्त विरल है।

प्रस्तुत संग्रह का नाम है "शेष स्मृतियाँ"। इसमें महाराज-कुमार के पाँच भावात्मक निबन्ध हैं जिनके लक्ष्य हैं—ताजमहल, फ़तहपुर सीकरी, आगरे का क़िला, लाहौर की तीन (जहाँगीर, नूरजहाँ और अनारकली की) क़ब्रें और दिल्ली का क़िला। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये पाँचों स्थान जिस प्रकार मुग़ल-सम्राटों के ऐश्वर्य, विभूति, प्रताप, आमोद-प्रमोद और भोग-विलास के स्मारक हैं उसी प्रकार उनके अवसाद, विषाद, नैराश्य और घोर पतन के। मनुष्य की ऐश्वर्य, विभूति, सुख और सौंदर्य की वासना अभि-व्यक्त होकर जगत् के किसी छोटे या बड़े खंड को अपने रंग में रँग कर मानुषी सजीवता प्रदान करती है। देखते-देखते काल उस

वासना के आश्रय मनुष्यों को हटाकर किनारे कर देता है। धीरे-धीरे ऐश्वर्य-विभूति का वह रंग भी मिटता जाता है। जो-कुछ शेष रह जाता है वह बहुत दिनों तक ईंट-पत्थर की भाषा में एक पुरानी कहानी कहता रहता है। संसार का पथिक मनुष्य उसे अपनी कहानी समझ कर सुनता है क्योंकि उसके भीतर झलकता है जीवन का नित्य और प्रकृत स्वरूप।

ये स्मारक न जाने कितनी बातें अपने पेट में लिए कहीं खड़े, कहीं बैठे, कहीं पड़े हैं। सीकरी का बुलन्द दरवाज़ा खड़ा है। महाराजकुमार उसके सामने जाते हैं और सोचते हैं——

"यदि आज यह दरवाज़ा अपने संस्मरण कहने लगे, पत्थरों का यह ढेर बोल उठे, तो भारत के न जाने कितने अज्ञात इतिहास का पता लग जावे और न जाने कितनी ऐतिहासिक त्रुटियाँ ठीक की जा सकें।"

कुछ व्यक्तियों के स्मारक चिह्न तो उनके पीछे उनके पूरे प्रतिनिधि या प्रतीक बन जाते हैं और उसी प्रकार घृणा या प्रेम के आलम्बन हो जाते हैं जिस प्रकार अपने जीवन-काल में वे व्यक्ति थे——

"जीवन बीत चुकने पर जब मनुष्य उसे समेट कर इस लोक से विदा लेता है तब संसार उस विगत आत्मा के संसर्ग में आई हुई वस्तुओं पर प्रहार कर या उन्हें चूम कर समझ लेता है कि वह उस अन्तर्हित आत्मा के प्रति अपने भाव प्रकट कर रहा है। उस मृत व्यक्ति के पाप या पुण्य का भार उठाते हैं उसके जीवन से सम्बद्ध ईंट और पत्थर।"

किसी अतीत जीवन के ये स्मारक या तो यों ही, शायद काल की कृपा से, बने रह जाते हैं अथवा जान-बूझ कर छोड़े जाते हैं। जान-बूझ कर कुछ स्मारक छोड़ जाने की कामना भी मनुष्य की प्रकृति के अन्तर्गत है। अपनी सत्ता के लोप की भावना मनुष्य को असह्य है। अपनी भौतिक सत्ता तो वह बनाए नहीं रख सकता;

अतः वह चाहता है कि उस सत्ता की स्मृति ही किसी जन-समूह के बीच बनी रहे। बाह्य जगत् में नहीं तो अन्तर्जगत् के किसी खंड में ही वह उसे बनाए रखना चाहता है। इसे हम अमरत्व की आकांक्षा या आत्मा के नित्यत्व का इच्छात्मक आभास कह सकते हैं—

"भविष्य में आने वाले अपने अन्त के तथा उसके अनन्तर अपने व्यक्तित्व के ही नहीं, अपने सर्वस्व के, विनष्ट होने के विचार मात्र से ही मनुष्य का सारा शरीर सिहर उठता है।........मनुष्य इस भौतिक संसार में अपनी स्मृतियाँ—अमिट स्मृतियाँ—छोड़ जाने को विकल हो उठते हैं।"

अपनी स्मृति बनाए रखने के लिए कुछ मनस्वी कला का सहारा लेते हैं और उसके आकर्षक सौंदर्य की प्रतिष्ठा करके विस्मृति के गड्ढे में झोंकने वाले काल के हाथों को बहुत दिनों तक—सहस्रों वर्ष तक—थामे रहते हैं—

"यद्यपि समय के सामने किसी की भी नहीं चलती तथापि कई मस्तिष्कों ने ऐसी खूबी से काम किया, उन्होंने ऐसी चालें चलीं कि समय के इस प्रलयंकारी भीषण प्रवाह को भी बाँधने में वे समर्थ हुए। उन्होंने काल को सौन्दर्य के अदृश्य किन्तु अचूक पाश में बाँध डाला है, उसे अपनी कृतियों की अनोखी छटा दिखा कर लुभाया है; यों उसे भुलावा देकर कई बार मनुष्य अपनी स्मृति के ही नहीं, किन्तु अपने भावों के स्मारकों को भी चिरस्थायी वना सका है।"

इस प्रकार ये स्मारक काल के प्रवाह को कुछ थाम कर मनुष्य की कई पीढ़ियों की आँखों से आँसू बहवाते चले चलते हैं। मनुष्य अपने पीछे होने वाले मनुष्यों को अपने लिए रुलाना चाहता है। महाराजकुमार के सामने सम्राटों की अतीत जीवन-लीला के ध्वस्त रंगमंच हैं, सामान्य जनता की जीवन-लीला के नहीं। इनमें जिस प्रकार भाग्य के ऊँचे-से-ऊँचे उत्थान का दृश्य निहित है वैसे ही गहरे-से-गहरे पतन का भी। जो जितने ही ऊँचे पर चढ़ा दिखाई देता है

गिरने पर वह उतना ही नीचे जाता दिखाई देता है। दर्शकों को उसके उत्थान की ऊँचाई जितनी कुतूहलपूर्ण और विस्मयकारिणी होती है उतनी ही उसके पतन की गहराई मार्मिक और आकर्षक होती है। असामान्य की ओर लोगों की दृष्टि भी अधिक दौड़ती है, टकटकी भी अधिक लगती है। अत्यन्त ऊँचाई से गिरने का दृश्य मनुष्य कुतूहल के साथ देखता है, जैसा कि इन प्रबन्धों में भावुक लेखक कहते हैं—

"ऊँचाई से खड्ड में गिरने वाले जलप्रपात को देखने के लिए सैकड़ों कोसों की दूरी से मनुष्य चले आते हैं।........उन उठे हुए कगारों पर टकरा कर उस जलधारा का छितरा जाना, खंड-खंड होकर फुहारों के स्वरूप में यत्र-तत्र विखर जाना, हवा में मिल जाना —बस इसी दृश्य को देखने में मनुष्य को आनन्द आता है।"

जीवन तो जीवन—चाहे राजा का हो, चाहे रंक का। उसके सुख और दुःख दो पक्ष होंगे ही। इनमें से कोई पक्ष स्थिर नहीं रह सकता। संसार और स्थिरता? अतीत के लम्बे-चौड़े मैदान के बीच इन उभय पक्षों की घोर विषमता सामने रख कर आप जिस भाव-धारा में डूबे हैं उसी में औरों को भी डुबाने के लिए भावुक महाराजकुमार ने ये शब्द-स्रोत बहाए हैं। इस पुनीत भाव-धारा में अवगाहन करने से वर्त्तमान की, अपने-पराये की, लगी-लिपटी मैल छँटती है और हृदय स्वच्छ होता है। सुख-दुःख की विषमता पर जिसकी भावना मुख्यतः प्रवृत्त होगी वह अवश्य एक ओर तो जीवन का भोग-पक्ष—यौवन-मद, विलास की प्रभूत सामग्री, कला-सौंदर्य की जगमगाहट, राग-रंग और आमोद-प्रमोद की चहल-पहल—और दूसरी ओर अवसाद, नैराश्य और उदासी सामने रखेगा। इतिहास-प्रसिद्ध बड़े-बड़े प्रतापी सम्राटों के जीवन को लेकर भी वह ऐसा ही करेगा। उनके तेज, प्रताप, पराक्रम, इत्यादि की भावना वह इतिहास-विज्ञ पाठक की सहृदयता पर छोड़ देगा। अपनी पुस्तक में महाराज-

कुमार ने अधिकांश में जो जीवन के भोग-पक्ष का ही अधिक विधान किया है उसका कारण मुझे यही प्रतीत होता है। इसी से 'मद' और 'प्याले' बार बार सामने आए हैं जो किसी को खटक सकते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं सुख और दुःख के बीच का वैषम्य जैसा मार्मिक और हृदयस्पर्शी होता है वैसा ही उन्नति और अवनति, प्रताप और ह्रास के बीच का भी। इस वैषम्य-प्रदर्शन के लिए एक ओर तो किसी के पतन-काल के असामर्थ्य, दीनता, विवशता, उदासीनता इत्यादि के दृश्य सामने रखे जाते हैं; दूसरी ओर उसके ऐश्वर्य-काल के प्रताप, तेज, पराक्रम इत्यादि के वृत्त स्मरण किए जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में दिल्ली के क़िले के प्रसंग में शाहआलम, मुहम्मद-शाह और बहादुरशाह के बुरे दिनों के चुने चित्र दिखा कर जो गूढ़ और गंभीर प्रभाव डाला गया है उसे हृदय के भीतर गहराई तक पहुँचाने वाली वस्तु है अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब आदि बादशाहों के तेज, प्रताप और पराक्रम की भावना। पर जैसा कि कहा जा चुका है भावुक लेखक ने इस भावना को प्रायः व्यक्त नहीं किया है; उसे पाठक के अन्तःकरण में इतिहास द्वारा प्रतिष्ठित मान लिया है।

बात यह है कि सम्राटों के प्रभुत्व, प्रताप, अधिकार इत्यादि सूचित करने वाली घटनाओं का उल्लेख तो इतिहास करता ही है, अतः भावुक कवि या लेखक अपनी कल्पना द्वारा जीवन के उन भीतरी-बाहरी ब्योरों को सामने लाता है जिन्हें इतिहास निष्प्रयोजन समझ छलाँग मारता हुआ छोड़ जाता है। ताजमहल जिस दिन बन कर पूरा हो गया होगा और शाहजहाँ बड़ी धूम-धाम के साथ पहले-पहल उसे देखने गया होगा वह दिन कितने महत्त्व का रहा होगा। पर जैसा कि महाराजकुमार कहते हैं, "उस महान् दिवस का वर्णन इतिहासकारों ने कहीं भी नहीं किया है। कितने

सहस्र नर-नारी आबाल-वृद्ध उस दिन उस अपूर्व मक़बरे के दर्शनार्थ एकत्र हुए होंगे ?....भिन्न-भिन्न दर्शकों के हृदयों में कितने विभिन्न भाव उत्पन्न हुए होंगे ?....जिस समय शाह-जहाँ ने ताज के उस अद्वितीय दरवाज़े पर खड़े होकर उस समाधि को देखा होगा उस समय उसके हृदय की क्या दशा हुई होगी ?" भावुक लेखक की कल्पना इतिहास द्वारा छोड़े हुए जीवन के ब्योरों को सामने रखने में प्रवृत्त हुई है। बात बहुत ठीक है। इस सम्बन्ध में मेरा कहना इतना ही है कि इतिहास के शुष्क निर्जीव विधान में तेज, प्रताप और प्रभुत्व व्यंजित करने वाले ब्योरे भी छूटे रहते हैं। उनके सजीव चित्र भी शक्तिशाली ऐतिहासिक पुरुषों की जीवन-स्मृति में अपेक्षित हैं। आशा है उनकी ओर भी महाराजकुमार की भाव-प्रेरित कल्पना प्रवृत्त होगी।

'शेष स्मृतियाँ' में अधिकतर जीवन का भोग-पक्ष विवृत है पर यह विवृति सुख-सौन्दर्य की अस्थिरता की भावना को विषण्णता प्रदान करती दिखाई पड़ती है। इसे हम लेखक का साध्य नहीं ठहरा सकते। संसार में सुख की भावना किस प्रकार सापेक्ष है इसकी ओर उनकी दृष्टि है। वे कहते हैं—

"दुःख के बिना सुख ! नहीं, नहीं ! तब तो स्वर्ग नरक से भी अधिक दुःखपूर्ण हो जायगा।........स्वर्ग का महत्त्व तभी हो सकता है जब उसके साथ नरक भी हो। स्वर्ग के निवासी उसको देखें तथा स्वर्ग की ओर नरकवासियों द्वारा डाली जाने वाली तरसभरी दृष्टि की प्यास को समझ सकें।"

मनुष्य के हृदय से स्वतन्त्र सुख-दुःख की, स्वर्ग-नरक की, कोई सत्ता नहीं। जो सुख-दुःख को कुछ नहीं समझते, यदि वे कहीं हों भी तो समझना चाहिए कि उनके पास हृदय नहीं है; वे दिलवाले नहीं—

"स्वर्ग और नरक। उनका भेद, सौन्दर्य और कुरूपता,.....

इनको तो वे ही समझ सकते हैं जिनके वक्षःस्थल में एक दिल— चाहे वह अधजला, झुलसा या टूटा हुआ ही क्यों न हो—धड़कता हो। उस स्वर्ग को, उस नरक को, दिलवालों ने ही तो बसाया। यह दुनिया, इसके बन्धन, सुख और दुःख......ये सब भी तो दिलदारों के ही आसरे हैं।"

"अनन्त यौवन, चिर सुख तथा मस्ती इन सब का निर्माण करके दिल ने उस स्वर्ग की नींव डाली थी। परन्तु साथ ही असंतोष तथा दुःख का निर्माण भी तो दिल के ही हाथों हुआ था।"

सुख के साथ दुःख भी लुका-छिपा लगा रहता है और कभी-न-कभी प्रकट हो कर उस सुख का अन्त कर देता है—

"दिलवालों के स्वर्ग में नरक का विष फैला। अनन्तयौवना विषकन्या भी होती है। उसका सहवास करके कौन चिरजीवी हुआ है? सुख को दुःख के भूत ने सताया। मस्ती और उन्माद को क्षयरूपी राजरोग लगा।"

जब संसार में कोई वस्तु स्थायी नहीं तो सुख-दशा कैसे स्थायी रह सकती है? जिसे कभी पूर्ण सुख-समृद्धि प्राप्त थी उसके लिए केवल उस सुख-दशा का अभाव ही दुःख स्वरूप होगा। उसे सामान्य दशा ही दुःख की दशा प्रतीत होगी। जो राजा रह चुका है उसकी स्थिति यदि एक सम्पन्न गृहस्थी की सी हो जायगी तो उसे वह दुःख की दशा ही मानेगा। सुख की यह सापेक्षता समष्टि रूप में दुःख की अनुभूति की अधिकता बनाए रहती है किसी एक व्यक्ति के जीवन में भी, एक कुल या वंश की परंपरा में भी। इसी से यह संसार दुःखमय कहा जाता है।

इस दुःखमय संसार में सुख की इच्छा और प्रयत्न प्राणियों की विशेषता है। यह विशेषता मनुष्य में सबसे अधिक रूपों में विकसित हुई है। मनुष्य की सुखेच्छा कितनी प्रबल, कितनी शक्तिशालिनी निकली! न जाने कब से यह प्रकृति को काटती-छाँटती, संसार

का कायापलट करती चली आ रही है। वह शायद अनन्त है, अनन्त का प्रतीक है। वह इस संसार में न समा सकी तब कल्पना को साथ लेकर उसने कहीं बहुत दूर स्वर्ग की रचना की—

"अमरत्व की भावना ही मनुष्य के जीवन को सौन्दर्य तथा माधुर्य से पूर्ण बनाती है। यह भौतिक स्वर्ग या उस पार का वह बहिश्त, एक ही भावना, चिर सुख की इच्छा ही उनमें पाई जाती है।"

इस चिर सुख के लिए मनुष्य जीवन भर लगातार प्रयत्न करता रहता है; अनेक प्रकार के दुःख, अनेक प्रकार के कष्ट उठाता रहता है। इस दुःख और कष्ट की परंपरा के बीच में सुख की जो थोड़ी सी झलक मिल जाती है वह उसको ललचाते रहने भर के लिए होती है, पर उसी को वह सुख मान लेता है—

"स्वर्ग-सुख, सुख-इच्छा का भावनापूर्ण पुंज, वह तो मनुष्य की कठिनाइयों को, सुख तक पहुँचने के लिए उठाए गए कष्टों को देख कर हँस देता है, और मनुष्य उसी कुटिल हँसी से ही मुग्ध होकर स्वर्ग-प्राप्ति का अनुभव करता है।"

उत्तरोत्तर सुख की इच्छा यदि मनुष्य के हृदय में घर न किए हो तो शायद उसे दुःख के इतने अधिक और इतने कड़े धक्के न सहने पड़ें। जिसे संसार अत्यन्त समृद्धिशाली, अत्यन्त सुखी समझता है उसके हृदय पर कितनी चोटें पड़ी हैं कोई जानता है? बाहर से देखने वालों को अकबर के जीवन में शान्ति और सफलता ही दिखाई पड़ती है। पर हमारे भावुक लेखक की दृष्टि जब फ़तेहपुर सीकरी के लाल-लाल पत्थरों के भीतर घुसी तब वहाँ अकबर के हृदय के टुकड़े मिले—

"अपनी आशाओं और कामनाओं को निष्ठुर संसार द्वारा कुचले जाते देख कर अकबर रो पड़ा। उसका सजीव कोमल हृदय फट कर टुकड़े टुकड़े हो गया। वे टुकड़े सारे भग्न स्वप्नलोक में बिखर

गए, निर्जीव होकर पथरा गए। सीकरी के लाल लाल खण्डहर अकबर के उस विशाल हृदय के रक्त से सने हुए टुकड़े हैं।"

चतुर्वर्ग में इसी सुख का नाम ही 'काम' है। यद्यपि देखने में 'अर्थ' और 'काम' अलग अलग दिखाई पड़ते हैं, पर सच पूछिए तो 'अर्थ' 'काम' का ही एक साधन ठहरता है, साध्य रहता है 'काम' या सुख ही। अर्थसंचय, आयोजन और तैयारी की भूमि है; काम भोग-भूमि है। मनुष्य कभी अर्थ-भूमि पर रहता है, कभी काम-भूमि पर। अर्थ-साधना और काम-साधना के बीच जीवन बाँटता हुआ वह चला चलता है। दोनों के स्वरूप "दोनों ध्रुवों की नाईं विभिन्न हैं"। इन दोनों में अच्छा सामंजस्य रखना सफलता के मार्ग पर चलना है। जो अनन्य भाव से अर्थ-साधना में ही लीन रहेगा वह हृदय खो देगा; जो आँख मूँद कर काम-साधना में ही लिप्त रहेगा वह किसी अर्थ का न रहेगा। अकबर ने किस प्रकार दोनों का मेल किया था, देखिए—

"स्वप्नलोक के स्वप्नागार में पड़ा अकबर साम्राज्य-संचालन का स्वप्न देखा करता था। राज्य-कार्य करते हुए भी सुख-भोग का मद न उतरने देने के लिए अकबर ने इस स्वप्नागार की सृष्टि की थी।"

अकबर को अपना साम्राज्य दृढ़ करने के लिए बहुत कष्ट उठाने पड़े थे, बड़ी तपस्या करनी पड़ी थी, पर उसके हृदय की वासनाएँ मारी नहीं गई थीं—

"प्रारम्भिक दिनों की तपस्या उसकी उमड़ती हुई उमंगों को नहीं दबा सकी थी। विलास-वासना की ज्वाला अब भी अकबर के दिल में जल रही थी, केवल उसके ऊपरी सतह पर संयम की राख चढ़ गई थी।"

गंभीर चिंतन से उपलब्ध जीवन के तथ्य सामने रख कर जब कल्पना मूर्त्त विधान में और हृदय भाव-संचार में प्रवृत्त होते हैं तभी मार्मिक प्रभाव उत्पन्न होता है। 'शेष स्मृतियाँ' इस प्रकार के अनेक

मार्मिक तथ्य हमारे सामने लाती हैं । मुमताजमहल बेगम शाहजहाँ को इस संसार में छोड़ कर चली गई । उसका भू-विख्यात मक़बरा भी बन गया । शाहजहाँ के सारे जीवन पर उदासी छाई रही । पर शोक की छाया मनुष्य की सुख-लिप्सा को सब दिन के लिए दबा दे, ऐसा बहुत कम होता है । कोई प्रिय वस्तु चली जाती है । उसके अभाव की अन्धकारमयी अनुभूति सारा अन्तःप्रदेश छेंक लेती है और उसमें किसी प्रकार की सुख-कामना के लिए जगह नहीं रह जाती । पर धीरे-धीरे वह भावना सिमटने लगती है और नई कामनाओं के लिए अवकाश होने लगता है । मनुष्य अपना मन लगाने के लिए कोई सहारा ढूँढ़ने लगता है क्योंकि मन बिना कहीं लगे रह नहीं सकता । शाहजहाँ ने महत्त्व-प्रदर्शन और सौंदर्य-दर्शन की कामना को खोद खोद कर जगाया और उसकी तुष्टि की भीख कला से माँगी । दिल्ली उसके हृदय के समान ही उजड़ी पड़ी थी । दिल्ली फिर से बसा कर उसने अपना हृदय फिर से बसाया । मन-ही-मन दिल्ली को शाह-जहाँबाद बना कर वह उसकी रूप-रेखा खींचने लगा । नर-प्रकृति के एक विशेष स्वरूप को सामने लाने वाली शाहजहाँ की इस मानसिक दशा की ओर महाराजकुमार ने इस प्रकार दृष्टिपात किया है—

"एक बार मुँह से लगी नहीं छूटती । एक बार स्वप्न देखने की सुख-स्वप्न-लोक में विचरने की लत पड़ने पर उसके बिना जीवन नीरस हो जाता है । प्रेम-मदिरा को मिट्टी में मिला कर शाहजहाँ पुनः मस्ती लाने को लालायित हो रहा था; अपने जीवन-सर्वस्व को खोकर जीवन का कोई दूसरा आसरा ढूँढ़ रहा था ।......सुन्दर सुकोमल अनारकली को कुचल देने वाली कठोर-हृदया राज्यश्री शाहजहाँ की सहायक हुई ।......राज्यश्री ने सम्राट् को प्रेमलोक से भुलावा देकर संसार के स्वर्ग की ओर आकृष्ट किया ।"

किसी को दुःख से संतप्त देख बहुत-से ज्ञानी बनने वाले इस जीवन की क्षणभंगुरता का, संयोग-वियोग की निःसारता आदि का

उपदेश देने लग जाते हैं। इस प्रकार के उपदेश शुष्क प्रथानुसरण या अभिनय के अतिरिक्त और कुछ नही जान पड़ते। दुःखी मनुष्य के हृदय पर इनका कोई प्रभाव नहीं; कभी-कभी तो ये उसे और भी क्षुब्ध कर देते हैं--

"दार्शनिक कहते हैं, जीवन एक वुदवुदा है, भ्रमण करती हुई आत्मा के ठहरने की एक धर्मशाला मात्र है। वे यह भी वताते हैं कि इस जीवन का संग तथा वियोग क्या है—एक प्रवाह में संयोग से साथ वहते हुए लकड़ी के टुकड़ों के साथ तथा विलग होने की कथा है। परन्तु क्या ये विचार एक संतप्त हृदय को शान्त कर सकते हैं?............सांसारिक जीवन की व्यथाओं से दूर वैठा हुआ जीवन-संग्राम का एक तटस्थ दर्शक चाहे कुछ भी कहे, किन्तु जीवन के इस भीषण संग्राम में युद्ध करते हुए घटनाओं के घोर थपेड़े खाते हुए हृदयों की क्या दशा होती है, यह एक भुक्त-भोगी ही वता सकता है।"

इसी प्रकार जीवन के और तथ्य भी हमारे सामने आते हैं। अपने प्राण या प्रभुत्व-ऐश्वर्य की रक्षा की बुद्धि या सामर्थ्य न रख कर भी किसी के प्रेम के सहारे मनुष्य किस प्रकार अपना जीवन पार करता जाता है इसका एक सच्चा उदाहरण जहाँगीर और नूरजहाँ के प्रसंग में मिलता है। जहाँगीर तो नूरजहाँ को पाकर 'मोहमयी प्रमाद-मदिरा' पीकर पड़ गया, नूरजहाँ ही उसके साम्राज्य को और समय समय पर उसको भी सँभालती रही--

"जहाँगीर भी आँखें वन्द किए पड़ा पड़ा सुरा, सुन्दरी तथा संगीत के स्वप्नलोक में विचर रहा था। किन्तु जव एक झोंका आया और जव तूफ़ान का अन्त होने लगा, तव जहाँगीर ने आँखें कुछ खोलीं, देखा कि उसको लिये नूरजहाँ रावलपिंडी के पास भागी चली जा रही थी, खुर्रम और महावत ख़ाँ झेलम के इस पार डेरा डाले पड़े थे।"

जीवन के एक तथ्य का मूर्त्त और सजीव चित्र खड़ा करने के लिए सहृदय लेखक ने कैसा सटीक और स्वाभाविक व्यापार चुना है। "जहाँगीर ने आँखें कुछ खोलीं, देखा कि उसको लिये नूरजहाँ भागी चली जा रही थी।" लेकर भागने का व्यापार सँभालने और बचाने का प्राकृतिक और सनातन रूप सामने खड़ा कर देता है।

यह बात नहीं है कि महाराजकुमार की दृष्टि अपने समकक्ष जीवन पर ही, शक्तिशाली सम्राटों के ऐश्वर्य, विभूति, उत्थान-पतन आदि पर ही पड़ी हो, सामान्य जनता के सुख-दुःख की ओर न मुड़ी हो। आपके भीतर जो शुद्ध मनुष्यता की निर्मल ज्योति है उसी के उजाले में आपने सम्राटों के जीवन को भी देखा है। यद्यपि जिन पाँचों स्थानों को आपने सामने रखा है उनका सम्बन्ध इतिहास-प्रसिद्ध शासकों से है, फिर भी उनके अतीत ऐश्वर्य-मद का स्मरण करते समय आपने उन बेचारों का भी स्मरण किया है जिनके जीवन का सारा रस निचोड़ कर वह मद का प्याला भरा गया था--

"वैभव से विहीन सीकरी के वे खँडहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव-लिप्सा को देख कर आज भी वीभत्स अट्टहास करते हैं। अपनी दशा को देख कर सुध आती है उन्हें उन करोड़ों मनुष्यों की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ, शासकों, धनिकों तथा विलासियों की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गई थीं। आज भी उन भव्य खँडहरों में उन पीड़ितों का रुदन सुनाई देता है।"

स्मृति-स्वरूपा कल्पना कवियों और लेखकों को या तो मुख्यतः अतीत के रूप-चित्रण में प्रवृत्त करती है अथवा कुछ मार्मिक रूपों को ले कर भावों की प्रचुर और प्रगल्भ व्यंजना में। दोनों का अपना अलग अलग मूल्य है। मेरी समझ में महाराजकुमार की प्रतिभा दूसरे ढर्रे की है। आपके प्रबन्धों में मानसिक दशाओं का भावों के उद्गार का ही मुख्य स्थान है, वस्तु-चित्रण का गौण या अल्प।

भावुक लेखक की दृष्टि किसी अतीत काल-खंड की संस्कृति के स्वरूप की ओर नहीं है; मानव-जीवन के नित्य और सामान्य स्वरूप की ओर है। इसका आभास मोती मसजिद के इस उल्लेख में कुछ मिलता है—

"उस निर्जन स्थान में एकाध व्यक्ति को देख कर ऐसा अनुमान होता है कि उन दिनों यहाँ आने वाले व्यक्तियों में से किसी की आत्मा अपनी पुरानी स्मृतियों के बन्धन में पड़ कर खिंची चली आई है।"

यह भावना अत्यन्त स्वाभाविक है। पर संस्कृति के स्वरूप पर विशेष दृष्टि रखने वाला भावुक उपर्युक्त वाक्य में आए हुए "एकाध व्यक्ति" के पहले 'पुरानी चाल-ढाल-वाला' विशेषण अवश्य जोड़ता।

वस्तु-चित्रण की ओर यदि महाराजकुमार का ध्यान होता तो दरबार की सजावट, दरबारियों की पोशाक, उनके खंभे टेक कर खड़े होने, उनकी ताज़ीम आदि का, इसी प्रकार विलास-भवन में बेगमों, बाँदियों और खोजों की वेशभूषा, ईरान और दमिश्क के रंगबिरंगे कालीनों और बड़े बड़े फ़ानूसों और शमःदानों का दृश्य अवश्य खड़ा करते। पर दृश्य-विधान उनका उद्देश्य नहीं जान पड़ता। इसका अभिप्राय यह नहीं कि विस्तृत वस्तु-चित्रण है ही नहीं। यह कहा जा चुका है कि सुख-दुःख का वैषम्य दिखाने के लिए महाराजकुमार ने भोग-पक्ष ही अधिकतर लिया है। अतः जहाँ सुखमय आमोद-प्रमोद, शोभा, सौन्दर्य, सजावट आदि के प्राचुर्य की भावना उत्पन्न करना इष्ट हुआ है वहाँ विस्तृत चित्रण भी अनूठेपन के साथ मिलता है, जैसे दिल्ली की क़िलेवाली नहर की जल-क्रीड़ा के वर्णन में—

"उस स्वर्गगंगा में, उस नहर-इ-बहिश्त में, खेल करती थीं उस स्वर्ग की अत्यनुपम सुन्दरियाँ। उन श्वेत पत्थरों पर अपनी सुगन्ध फैलाता हुआ वह जल अठखेलियाँ करता, कलकल ध्वनि में चिर संगीत सुनाता चला जाता था, और वे अप्सराएँ अपने

श्वेतांगों पर रंगविरंगे वस्त्र लपेटे, नूपुर पहने, अपने ही ध्यान में मस्त झुन-झुन की आवाज़ करती हुई जल-क्रीडा करती थीं। .... और जब वह हम्माम बसता था, स्वर्ग-निवासी जब उस स्वर्गगंगा में नहाने के लिए आते थे, और अनेकानेक प्रकार के स्नेह से पूर्ण चिराग़ उस हम्माम को उज्ज्वलित करते थे, रंगविरंगे सुगन्धित जलों के फ़व्वारे जब छूटते थे, तब वहाँ उस स्वर्ग में सौन्दर्य बिखरा पड़ता था, सुख छलकता था, उल्लास की बाढ़ आ जाती थी, मस्ती का एकछत्र शासन होता था और मादकता का उलंग नर्त्तन।"

यह कह आए हैं कि मानसिक दशाओं के चित्रण और उमड़ते भावों की अनूठी व्यंजना ही इस पुस्तक की मुख्य विशेषता है। मानसिक दशाएँ हैं अकबर, शाहजहाँ ऐसे ऐतिहासिक पात्रों की; उमड़ते हुए भाव हैं लेखक के अपने। सीकरी के प्रसिद्ध फ़क़ीर सलीम-शाह से मिलने पर अकबर का राज-तेज तप के तेज के सामने किस प्रकार फीका पड़ा और उसकी वृत्ति किस प्रकार बहुत दिनों तक कुछ और ही रही, पर फिर ऐश्वर्य-विभूति में लीन हुई इसका बड़े सुन्दर ढंग से निरूपण है––

"अकबर ने तप और संयम की अद्वितीय चमक देखी, किन्तु अनुकूल वातावरण न पाकर वह ज्योति अन्तर्हित हो गई। पुनः सर्वत्र भौतिकता का अन्धकार छा गया, किन्तु इस बार उसमें आशा की चाँदनी फैली।"

इसी प्रकार मुमताजमहल के देहावसान पर शाहजहाँ की मनो-वृत्ति का भी मार्मिक चित्रण है।

अब थोड़ा महाराजकुमार के वाग्वैशिष्टच को भी समझना चाहिए। उनके निबन्ध भावात्मक और कल्पनात्मक हैं। कल्पना से मेरा अभिप्राय वस्तु की कल्पना या प्रस्तुत की कल्पना नहीं; प्रस्तुत के वर्णन में अत्यन्त उद्बोधक और व्यंजक अप्रस्तुतों की कल्पना है। इसमें सन्देह नहीं कि अप्रस्तुत विधान अत्यन्त कलापूर्ण, आकर्षक

और मर्मस्पर्शी हैं। बाह्य परिस्थितियों या वस्तुओं का संश्लिष्ट चित्रण तो इन भावप्रधान निबन्धों का लक्ष्य नहीं है, पर उन मूर्त्त वस्तुओं के सौन्दर्य, माधुर्य, दीप्ति इत्यादि की भावना जगाना उनके भाव-विधान के अन्तर्गत है। अतः इस प्रकार की भावना जगाने के लिए अप्रस्तुतों के आरोप और अध्यवसान का, साम्यमूलक अलंकार-पद्धति का सहारा लिया गया है। जैसे नगरी को कई जगह प्रेयसी सुन्दरी का रूपक दिया गया है। शाहजहाँ की बसाई दिल्ली "बढ़ते हुए प्रौढ़ साम्राज्य की नवीन प्रेयसी" और अन्यत्र "बहुभर्तृका पांचाली" कही गई है। लाल क़िले का संकेत बड़े ही अनूठे ढंग से इस प्रकार किया गया है—

"अपने नये प्रेमी को स्थान देने के लिए उसने एक नवीन हृदय की रचना की।"

कहीं कहीं प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक साथ बहुत ही सुन्दर समन्वय है, जैसे—

"वह लाल दीवार और उस पर वे श्वेत स्फटिक महल—उस लाल लाल सेज पर लेटी हुई वह श्वेतांगी।"

जिन दृश्यों की ओर संकेत किया गया है वे भावना से पूर्णतया रंजित होने पर भी लेखक के सूक्ष्म निरीक्षण का पता देते हैं, यह बताते हैं कि उनमें परिस्थिति के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अंगों के साक्षात्कार की पूर्ण प्रतिभा है। शाहजहाँ की नई दिल्ली पूरी सजधज से उसके प्रथम स्वागत के लिए खड़ी है। वह जमुना के उस पार से आ रहा है। लाल दीवार के ऊपर श्वेत प्रासाद उठे दिखाई पड़ रहे हैं। नाव धीरे-धीरे निकट पहुँचती है। अब श्वेत प्रासाद दृष्टि से ओझल हो जाते हैं; लाल दीवार ही सामने दिखाई पड़ रही है। यह दृश्य भावना से रंजित होकर इस रूप में सामने आता है—

"श्वेतांगी—अपने प्रियतम को आते देख सकुचा गई, उसने लज्जावश अपना मुख अपने अंचल में छिपा लिया।"

दिल्ली के महलों में यमुना का जल लाकर नहरें क्या निकाली गई मानो "यमुना ने अपना दिल चीर कर उस स्वर्ग को सींचा; उस कृष्णवर्णा ने अपने हार्दिक भावों तथा शुद्ध प्रेम का मीठा चमचमाता जीवन उस स्वर्ग में बहाया।"

प्रस्तुत पुस्तक में अध्यवसान-पद्धति पर बहुत जगह घटनाओं की ओर भी संकेत हैं, जिन्हें इतिहास के ब्योरों से अपरिचित जल्दी नहीं समझ सकते। मुग़ल बादशाहों के इतिवृत्त से परिचित पाठक ही महाराजकुमार के निबन्धों का पूरा आनन्द उठा सकते हैं। जो जहाँगीर और अनारकली के दुःखपूर्ण प्रेम-प्रसंग को नहीं जानते वे 'तीन क़ब्रें' के बहुत से अंश की भावात्मकता हृदयंगम नहीं कर सकते। "उजड़ा स्वर्ग" में, जो महाराजकुमार की सबसे प्रौढ़, मार्मिक और कलापूर्ण रचना है, ऐसे कई स्थल हैं जहाँ घटनाओं का उल्लेख साम्यमूलक गूढ़ संकेतों द्वारा ही है, जैसे——

"आलम का शाह पालम तक शासन करता था।......जब इस लोक में देखने योग्य कुछ न रहा तब वह प्रज्ञाचक्षु हो गया। परंतु वारांगनाओं को दिव्य दृष्टि से क्या काम? उन्होंने अन्धों का कब साथ दिया है? अन्धे कब तक अन्धी पर शासन कर सके हैं? दुर्भाग्य रूपी दुर्दिन के उस अँधियारे में, नितान्त अन्धेपन की उस अनन्त रात्रि में, रात्रि का राजा उस अंधी को ले उड़ा और वह पहुँची वहाँ जहाँ समुद्र के बीच शेषशायी सुखपूर्ण विश्राम कर रहे थे।"

अन्धा शाहआलम किस प्रकार दिल्ली की सल्तनत न सँभाल सका और बहुत दिनों तक मराठों की देख-रेख में रह कर अंत में सात समुद्र पार के अँगरेज़ों की शरण में गया जिससे उसकी राजशक्ति उससे विमुख होकर वस्तुतः अँगरेज़ों के हाथ में चली गई इसी का संकेत ऊपर के उद्धरण में है।

भावुक लेखक ने हुमायूँ के मक़बरे को स्वर्ग की बग़ल का नरक कहा है, जिसने एक दूसरे से दिल का दर्द सुनाने के लिए—

"न जाने कितने दुःखी मुग़ल शासकों को अपनी ओर आकर्षित किया। दुःख का वह अपार सागर, निराशा की आहों का वह तपा-तपाया हुआ कुंड, आँसुओं का वह भीषण प्रवाह, टूटे हुए दिलों की वह दर्दभरी चीख़!...वे टूटे दिल एक साथ बैठ कर रोते हैं, रो रो कर उन्होंने कई बार उन रक्तरंजित पत्थरों को धो डाला ......पर हृदय का वह रुधिर बहुत गहरा रंग लाया है, उनके धोये नहीं धुलता।"

जो दारा की गति से परिचित हैं, जो जानते हैं कि सन् १८५७ के बलवे में शाही ख़ानदान के लोगों ने उच्छिन्न होने के पहले उसी मक़बरे में पनाह ली थी, वे ही ऊपर की पंक्तियों का पूरा प्रभाव ग्रहण कर सकते हैं।

दिल्ली का क़िला हमारे भावुक महाराजकुमार को 'उजड़ा स्वर्ग' दिखाई पड़ा है। उसने उनके हृदय में न जाने कितनी करुण स्मृतियाँ जगाई हैं। दिल्ली के नाम-मात्र के अन्तिम बादशाह बहादुर-शाह ने अपना क्षोभपूर्ण दीन जीवन उसी क़िले में रोते रोते बिताया था। इस भौतिक जगत् में सुख का कहीं ठिकाना न पाकर वे अपना नाम 'ज़फ़र' रख कर कविता के कल्पनालोक में भागा करते थे। पर वहाँ भी उनका रोना न छूटा; वहाँ भी बुरों की जान को वे रोते थे—'ऐसे रोए बुरों की जाँ को हम, रोते रोते उलट गईं आँखें'। उनके सामने ज़ौक़ और ग़ालिब ऐसे उस्ताद अपने कलाम सुनाते थे। शाहज़ादे की शादी के मौक़े पर ग़ालिब ने एक 'सेहरा' लिखा था जिसके किसी वाक्य में ज़ौक़ ने अपने ऊपर आक्षेप समझ कर जवाब दिया था। पर शायरी की इस चहल-पहल से बहादुरशाह के आँसू रुकने वाले नहीं थे। बहादुरशाह के जीवन के अन्तिम दिनों की ओर लेखक ने इस प्रकार गूढ़ संकेत किया है—

"वह उजड़ा स्वर्ग भी काँप उठा अपने उस शूल से। निरन्तर रक्त के आँसू बहाने वाले उस नासूर को निकाल बाहर करने की उस स्वर्ग ने सोची। परन्तु......उफ़! वह नासूर स्वर्ग के दिल में ही तो था; उसको निकाल बाहर करने में स्वर्ग ने अपने हृदय को फेंक दिया। और अपनी मूर्खता पर क्षुब्ध स्वर्ग जब दर्द के मारे तड़प उठा, तब भूडोल हुआ, अन्धड़ उठा, प्रलय का दृश्य प्रत्यक्ष देख पड़ा। पुरानी सत्ता का भवन ढह गया, समय-रूपी पृथ्वी फट गई और मध्ययुग उसके अनन्त गर्भ में सर्वदा के लिए विलीन हो गया।"

इस हृदयद्रावक रूपजाल के भीतर कौशलपूर्वक जो घटनाएँ छिपी हैं उनकी ओर पाठक का ध्यान जल्दी नहीं जा सकता। वह यह जल्दी नहीं समझ सकता कि उजड़े स्वर्ग का कँपना है सन् १८५७ की हलचल का पूरब से बढ़ते बढ़ते दिल्ली तक पहुँचना, नासूर है बहादुरशाह, नासूर का निकलना है बहादुरशाह का लाल क़िला छोड़ना और भूडोल और अन्धड़ हैं दिल्ली पर कब्ज़ा करने वाले बलवाइयों के साथ अँगरेज़ों का घोर युद्ध।

सुख-दुःख की दशाओं का प्रत्यक्षीकरण भी इसी रमणीय अलंकृत पद्धति पर हुआ है। शाहजहाँ ने यद्यपि अपनी प्रौढ़ावस्था में नई दिल्ली बसाई पर क़िले के भीतर मानो वह स्वर्ग का एक खंड ही उतार लाया। वह विभूति, वह शोभा, वह सजावट अन्यन्त्र कहाँ? उस स्वर्गधाम के प्रमत्त विलास और उन्मत्त उल्लास की यह झलक देखिए—

"पत्थरों तक पर मस्ती छा जाती थी; वे भी मत्त उत्तप्त हो जाते थे और उन पत्थरों तक से सुगन्धित जल के फ़व्वारे छूटने लगते थे।......उस स्वर्ग की वह राह! विलासिता बिकती थी उस राह में, मादकता की लाली वहाँ सर्वत्र फैली हुई थी और चिर संगीत दुःख की भावना तक को धक्के देता था। दुःख-दुःख,..... उसे तो नौबत के डंके की चोट, मुर्दे की खाल की ध्वनि ही निकाल

बाहर करने को पर्याप्त थी। बाँस की वे बाँसुरियाँ—अपना दिल तोड़ तोड़ कर अपने वक्षःस्थल को छिदवा कर भी सुख का अनुभव करती थीं। उन मदमस्त मतवालों के अधरों का चुम्बन करने को लालायित बाँस के उन टुकड़ों की आहों में भी सुमधुर सुखसंगीत ही निकलता था। मुर्दे भी उस स्वर्ग में पहुँच कर भूल गए अपनी मृत्यु-पीड़ा; उल्लास के मारे फूल कर ढोल हो गए, और उनके भी रोम रोम से यही आवाज आती थी 'यहीं है, यहीं है'।"[1]

पतन-काल के ध्वंसकारी आघातों, विपत्ति के झोंकों और प्रलयंकर प्रवाहों के उपरान्त सम्पत्ति के जीर्ण, शीर्ण और जर्जर अवशेषों के बीच मरती हुई कामनाओं, उठती हुई वेदनाओं, उमड़ते हुए आँसुओं, दहकती हुई आहों तथा नैराश्यपूर्ण बेबसी, दीनता और उदासी का एक लोक ही अपनी प्रतिभा के बल से महाराजकुमार ने खड़ा कर दिया है। उपर्युक्त स्वर्ग जब उजड़ा है तब इस करुणलोक में परिणत हुआ है। जहाँ शाहजहाँ ने वह स्वर्ग बसाया था वहीं अन्त में उसके घराने भर के लिए एक छोटा-सा नरक तैयार हो गया जिसके बाहर वह कभी निकल न सका। इस नरक को अपने गर्भ के भीतर रख कर स्वर्ग अपना वह रूप-रंग कब तक बनाए रख सकता था? शाहजहाँ की दृष्टि ज़बर्दस्ती हटा दी जाने से और औरंगज़ेब के भूल कर भी उसकी ओर न जाने से उसका रंग फीका पड़ गया और धीरे धीरे उड़ने लगा। यह तो हुई बाहर की दशा। उस स्वर्ग के अन्तर्जगत् में भी मानस-प्रदेश में भी कई खंड ऐसे थे जो एक दम रूखे-सूखे थे, जिनमें सरसता का नाम न था। बहुत-से प्राणी अत्यन्त नीरस जीवन व्यतीत करते थे—

"अनेकों ने दिल नामक वस्तु के अस्तित्व को भुला दिया था। दिल—हृदय—उसके नाम पर तो उनके पास दो चुटकी राख थी।"

---

[1] अगर फ़िरदौस बर रूए ज़मीनस्त। हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त।

मुग़ल बादशाहों के अन्तःपुर में शाहज़ादियों का ऐसा ही दबाया हुआ जीवन था। न उनमें यौवन का उल्लास उठने पाता था, न प्रेम का आलंबन खड़ा होने पाता था। विवाह भला उनका किसके साथ हो सकता था? जहानआरा के अंतिम श्वासों से आवाज़ आती थी—

"नहीं, नहीं! मेरी क़ब्र पर पत्थर न रखना।.....इस उत्तप्त छाती पर रह कर उस बेचारे पत्थर की क्या दशा होगी?"

उन शाहज़ादियों की क़ब्रों के भीतर पड़े कंकाल सुख को एक दुराशा मात्र बता रहे हैं। महाराजकुमार को इन कंकालों के गड़े दुःख जगत् के सारे वर्त्तमान दुःखों के बीज जान पड़े हैं। उन्होंने मनुष्यता के इतिहास में दुःख की एक अखंड परंपरा का साक्षात्कार किया है, तभी वे कहते हैं—

"इन कंकालों के दुःख से ही विश्व-वेदना का उद्भव होता है और उन्हीं के निश्वासों से संसार की दुःखमयी भावना उद्भूत होती है।"

औरङ्गज़ेब के पीछे मुग़ल सल्तनत के ज़वाल का परवाना लिए मुहम्मदशाह और शाहआलम ऐसे बादशाह आते हैं। मुहम्मदशाह ने उस स्वर्ग में पुराना रंग लाने का प्रयत्न किया और 'रँगीले' कहलाए। एकाएक नादिरशाह टूट पड़ा और स्वर्ग को लूट कर तथा दिल्ली की पूरी दुर्दशा करके चल दिया। स्वर्ग के निवासियों की क्या दशा हुई?—

"उनकी सत्ता को जंगली अफ़ग़ानों ने ठुकराया, उनके ताज और तख़्त को रौंद कर ईरान के गड़रिये ने दिल्लीश्वर की प्रजा का भेड़-बकरियों की तरह संहार किया।.......और यह सब देख कर भी स्वर्ग की आत्मा अविचलित रही।"

मुहम्मदशाह स्वर्ग-सुख-भोग की वासना मन में जगाते तो रहे पर 'अशक्तों की सत्ता की ऐंठ' स्वर्ग की मरम्मत कहाँ तक कर

सकती थी। उसका उजड़ना तो आरम्भ हो गया था। आगे चलकर शाहआलम की आँखें यह ध्वंस न देख सकीं, फूट गईं। अब उतने ऊँचे उत्थान का उतना ही गहरा पतन सामने आया।

दिल्ली के क़िले में दीवान ख़ास के पास के एक द्वार पर एक तराज़ू बना हुआ है जिसे 'अदल का मीज़ान' या न्यायतुला कहते हैं। उस स्वर्ग में अब तक जो सुख उठाया गया था उसका भार अब बहुत हो गया था, सुख का पलड़ा बहुत नीचे झुक गया था। अतः दूसरे पलड़े पर काँटे की तोल उतने ही दुःख का रखा जाना दैव को आवश्यक प्रतीत हुआ––

"उस स्वर्ग की वह न्यायतुला स्वर्ग के उस महान् भार को न सह सकी। अपनी न्यायतुला कहीं नष्ट न हो जाय इसी विचार से उस महान् अदृष्ट तुलाधारी ने सुख-दुःख का समतोल करने की सोची। स्वर्ग के सुख के सामने तुलने को दुःख का सागर उमड़ पड़ा।"

दिल्ली के क़िले के भीतर भर के बादशाह बहादुरशाह किस प्रकार उस सागर में बहे और बर्मा के किनारे जा लगे, यह दुःख भरी कहानी इतिहास के पन्नों में टँकी हुई है। वह घोर अधःपतन, भीषण विप्लव और दारुण दुर्विपाक दिगन्तव्यापी स्वरूप में सामने लाया गया है। इस स्वरूप को खड़ा करने में प्रकृति की सारी ध्वंसकारिणी शक्तियाँ, भूतों के सारे कराल वेग तथा मानसलोक के सारे क्षोभ, सारी व्याकुलता, सारे उद्वेग, सारी विह्वलता और सारी उदासी काम में लाई गई हैं––

"उफ़! स्वर्ग की वह अन्तिम रात! जब स्वर्गीय जीवन अन्तिम साँसें ले रहा था। प्रलय का प्रवाह स्वर्ग के दरवाज़े पर टकरा टकरा कर लौटता था और अधिकाधिक वेग के साथ पुनः आक्रमण करता था। साँयँ साँयँ करती हुई ठंडी हवा बह रही थी, न जाने कितनों के भाग्य-सितारे टूट-टूट कर गिर रहे थे। दुर्भाग्य

के उस दुर्दिन की अँधेरी अमावस्या की रात उस स्वर्ग में घूमती थीं उस स्वर्ग के निर्माताओं की प्रेतात्माएँ।........परन्तु उस रात भर भी स्वर्ग में मुग़लों का अन्तिम चिराग़ जलता रहा।"

बहादुरशाह का लाल क़िला छोड़ना इतिहास की एक अत्यंत मार्मिक घटना है। महाराजकुमार की अध्यवसान-आरोपमयी अलंकृत शैली मार्मिक प्रभाव उत्पन्न करने की कितनी शक्ति रखती है यह जैसे सर्वत्र वैसे ही यहाँ भी दिखाई पड़ता है––

"सूरज निकला।......अन्धड़ बढ़ रहा था, दुर्दिन के सब लक्षण पूर्णतया दिखाई दे रहे थे, भाग्याकाश दुर्भाग्यरूपी बादलों से छा रहा था;......वह दिया, स्वर्गीय स्नेह की वह अन्तिम लौ झिलमिला कर बुझ गई; और तब......उस वंश की आशाओं का, उस साम्राज्य के मुट्ठी भर अवशेषों का, अकबर और शाहजहाँ के वंशजों की अन्तिम सत्ता का जनाज़ा उस स्वर्ग से निकला। रो रो कर आसमान ने सर्वत्र आँसू के ओसकण बिखेरे थे, इस कठोर-हृदया पृथ्वी को भी आहों के कुहरे में राह सूझती न थी। परन्तु .....विपत्तियों का मारा, जीवन-यात्रा का वह थका हुआ पथिक, सितम पर सितम सह कर भी मुग़लों की सत्ता तथा उनके अस्तित्व के जनाज़े को उठाए, अपने भग्न हृदय को समेटे चला जा रहा था।"

'बेबसी का मजार'––'जीवित समाधि'––बना हुआ बादशाह उसी स्वर्ग के प्रतिवेशी नरक में––हुमायूँ के मक़बरे में पनाह लेता है। फिर वहाँ से क़ैद होकर बर्मा जाता है––

"नरक! दुःख का वह आगार भी बेबसी के इस मजार को देखकर रो पड़ा।......वहीं उस नरक में, अकबर की प्यारी सत्ता पृथ्वी में समा गई, जहाँगीर की विलासिता बिखर गई, शाह-जहाँ का वैभव जल-भुन कर खाक हो गया, औरंगज़ेब की कट्टरता मुग़लों के रुधिर में डूब गई और पिछले मुग़लों की असमर्थता भी न जाने कहाँ खो गई। लोहा बजा कर दिल्ली पर अधिकार करने

वाले लोहा खड़खड़ाते हुए दिल्ली से निकले; लोहा लेकर वे आए थे, लोहा पहने वहाँ से गए।"

मुग़ल सम्राटों की विपत्ति और नाश की उसी रंगभूमि पर, हुमायूँ के उसी नरक-रूप मक़बरे के पास दुःख से जर्जर बहादुरशाह के सामने उनके बेटे और दो पोते ढूँढ़ कर लाए गए और गोली से मार दिए गए। तड़प तड़प कर उस अभागे बुड्ढे के सामने उन्होंने प्राण छोड़े—

"दिल्ली के अन्तिम मुग़ल सम्राट् की एकमात्र आशाएँ रक्त-रंजित हो कर पड़ी थीं। कुचली जाने पर उनका लोथड़ा खून से शराबोर खंड खंड होकर पड़ा था; और उन भग्नाशाओं के घाव तक मुग़लों के उस भीषण दुर्भाग्य पर खून के दो आँसू बहाए बिना न रह सके।......बहादुर नरक में भी लुट गया। वहाँ उसने अपने टूटे दिल को भी कुचला जाते देखा, उस हृदय की गम्भीर दरारों की खोज होते देखी, और अपने दिल के उन टुकड़ों को संसार द्वारा ठुकराया जाते देखा।"

अपने वंश का नाश अपनी आँखों के सामने देख कर बहादुरशाह क़ैद होकर दिल्ली से निकाले, हिन्दुस्तान से निकले और बर्मा पहुँचा दिए गए जहाँ मंगोल ढाँचे के पीले रंग के लोग और पीले वस्त्र लपेटे भिक्खु ही भिक्खु दिखाई देते थे। भीतर मरी हुई आशा की पीली मुर्दनी छाई हुई थी; बाहर भी सब पीला ही पीला दिखाई देता था। अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् का कैसा अनूठा सामंजस्य नीचे दिखाया गया है—

"अब तो अपनी आशा के एकमात्र सहारे को भी अपनी खुली आँखों नष्ट होते देख कर उसे आशा की सूरत तो क्या उसके नाम तक से घृणा हो गई। ......इस भारत से उसने मुख मोड़ लिया। उसे अब निराशा का पीलिया हो गया; और तब वह पहुँचा उस देश में जहाँ सब कुछ पीला ही पीला देख पड़ता था। नर-नारी भी

पीत वर्ण की चादर ही ओढ़े नहीं फिरते थे किन्तु स्वयं भी उस पीत वर्ण में ही शराबोर थे। निराशा के उस पुतले ने निराशापूर्ण देश की उस एकान्त अँधेरी सुनसान रात्रि में ही अन्तिम साँसें तोड़ीं।"

उस स्वर्ग की—लाल क़िले के भीतर के महलों की—सम्राटों की प्रेयसी उस दिल्ली की क्या दशा हुई क्या यह भी बताने की बात है? वह ध्वस्त हो गया। जमुना भी क़िले को छोड़ कर हट गई। संगमरमर के महलों के भीतर जमुना का जो जल बहा करता था वह भी बंद हो गया। नहरें सूखी पड़ी हैं—

"स्वर्ग उजड़ गया और दुर्भाग्य के उस अन्धड़ ने उसके टूटे दिल को न जाने कहाँ फेंक दिया। उस चमन का वह बुलबुल रो चीख़ कर, तड़फड़ा कर न जाने कहाँ उड़ गया।"......"यमुना के प्रवाह का मार्ग भी बदला। उस स्वर्ग को, स्वर्ग के उस शव को, छोड़ कर वह चल दी, और अपने इस वियोग पर वह जी भर कर रोई; किन्तु उसके उन आँसुओं को, स्वर्ग के प्रति उसके इस स्नेह को स्वर्ग के दुर्भाग्य ने सुखा दिया; उस नहर-इ-बहिश्त ने भी स्वर्ग की धमनियों में बहना छोड़ दिया।......स्वर्ग भी खंड खंड हो गया, उसकी भाग्य-लक्ष्मी वहीं उन्हीं खण्डहरों में दब कर मर गई।"

अब तो क़िले की दीवारों के भीतर उस स्वर्ग का खँडहर ही रह गया है जिसके बीच खड़े दर्शक का हृदय उसकी अतीव सजीवता, सुषमा और सरसता की स्मृति-स्वरूपा कल्पना में प्रवृत्त होता है—

"भारतीय सम्राटों की असूर्यम्पश्या प्रेयसी का वह अस्थिपंजर दर्शकों के लिए देखने की एक वस्तु हो गया है। दो आने में ही हो जाती है राज्यश्री की उस लाड़ली, शाहजहाँ की नवोढ़ा के उस सुकोमल शरीर के रहे-सहे अवशेषों की सैर! उस उजड़े स्वर्ग को, उस अस्थिपंजर को देख कर संसार आश्चर्य-चकित हो जाता है, ...श्वेत हड्डियों के उन टुकड़ों में सुकोमलता का अनुभव करता है; उन सड़े-गले, रहे-सहे, लाल-लाल मांसपिंडों में उसे मस्ती

की मादक गन्ध आती जान पड़ती है। उस शान्त निस्तब्धता में उस मृत स्वर्ग के दिल की धड़कन सुनने का वह प्रयत्न करता है; उस जीवन-रहित स्थान में रस की सरसता का स्वाद उसे आता है; उस अँधेरे खँडहर में कोहनूर की ज्योति फैली हुई जान पड़ती है।"

ध्यान देने की बात यह है कि महाराजकुमार ने आरोप और अध्यवसान की अलंकृत पद्धति का कितना प्रगल्भ और प्रचुर प्रयोग किया है फिर भी उसके द्वारा सर्वत्र अनुभूति के तीव्र और मर्मस्पर्शी स्वरूप का ही उद्घाटन होता है। मार्मिकता का साथ छोड़ कर वह अलग ही अपना वैचित्र्य दिखाती कहीं नहीं जान पड़ती। कहीं कहीं बहुत ही अनूठी सूक्ष्म, बहुत ही सुन्दर उद्भावना है, पर वह कलाबाजी नहीं है, भाव-प्रेरित प्रतीति की झलक है।

आगरे और दिल्ली के कुछ उजड़े हुए महल अभी खड़े हैं। जब उगते हुए सूर्य की अरुण प्रभा उन पर पड़ती है या निर्मल चाँदनी उनमें छिटकती है तब मानो उन जगमगाते दिनों की, प्रेम के उस उद्दीपित जीवन की स्मृति उनमें जग पड़ती है। इसी प्रकार सूर्य जब अपना प्रखर प्रकाश उन पर डालता है तब मानो उनके पूर्व प्रताप की स्मृति अपना स्वरूप झलकाती है—

"प्रातःकाल बाल सूर्य की आशामयी किरणें जब उस रक्तवर्ण क़िले पर गिरती हैं तब वह चौंक उठता है। उस स्वर्ण प्रभात में वह भूल जाता है कि अब उसके उन गौरवपूर्ण दिनों का अन्त हो गया है, और एक बार पुनः पूर्णतया कान्तियुक्त हो जाता है।"..."हड्डियों का वह ढेर! वे श्वेत पत्थर! ....जब सूरज चमकता है और उस कंकाल की हड्डी-हड्डी को करों से छूकर अपने प्रकाश द्वारा आलोकित करता है, तब वे पत्थर अपने पुराने प्रताप को याद कर तमतमा जाते हैं।....रात्रि में चाँद को देखकर उन्हें सुध आ जाती है अपने उस प्यारे प्रेमी की, और मिलन की सुखद घड़ियों की स्मृतियाँ पुनः उठ खड़ी होती हैं।"

शाहजहाँ अपनी नई बसाई प्यारी दिल्ली में प्रवेश करने जमुना के उस पार से आ रहा है। जमुना के काले जल में क़िले की लाल दीवार और उसके ऊपर उठे हुए संगमरमर के सफ़ेद महलों की परछाहीं पड़ रही हैं। इन तीनों रंगों में हमारे भावुक महाराजकुमार को मुग़ल साम्राज्य की या दिल्ली की तीनों दशाओं का आभास इस प्रकार दिखाई पड़ता है—

"एकबारगी यमुना त्रिकाल-सम्बन्धी दृश्यों की त्रिवेणी बन गई, उत्थान की लाली, प्रताप का उजेला तथा अवसान की कालिमा, तीनों का सम्मिलित प्रतिविम्ब उस महानदी में देख पड़ता था।"

जीवन-दशा के चित्रण के लिए कई स्थलों पर प्रकृति के नाना रूपों को लेकर बड़ी सुन्दर हेतूत्प्रेक्षाएँ मिलती हैं। जहाँगीर और अनारकली के प्रेम का दुःखपूर्ण अन्त हुआ यह इतिहास बतलाता है। वह विशाल और उज्ज्वल प्रेम मानो समस्त प्रकृति की शक्तियों से देखा न गया। सब-की-सब उसे ध्वस्त करने पर उद्यत हो गईं—

"आह! यह सुख उनसे देखा न गया। अनारकली को खिलते देख कर चाँद जल उठा, उस ईर्ष्याग्नि में वह दिन दिन क्षीण होने लगा। उषा ने अनारकली की मस्ती से भरी अलसाई हुई उन अधखुली पलकों को देखा और क्रोध के मारे उसकी आँख लाल लाल हो गई। गोधूली ने यह अपूर्व सुखद मिलन देखा और अपने अचिरस्थायी मिलन को याद कर उसने अपने मुख पर निराशा का काला घूँघट खींच लिया।"

महाराजकुमार के ये सब निबन्ध भावात्मक हैं यह तो स्पष्ट है। भावात्मक निबन्धों की दो शैलियाँ देखी जाती हैं—धारा-शैली और तरंग शैली। इन निबन्धों की तरंग-शैली है जिसे विक्षेप-शैली भी कह सकते हैं। यह भावाकुलता की उखड़ी-पुखड़ी शैली है। इसमें भावना लगातार एक ही भूमि पर समगति से नहीं चलती रहती; कभी इस वस्तु को, कभी उस वस्तु को पकड़ कर उठा करती है।

इस उठान को व्यक्त करने के लिए भाषा का चढ़ाव-उतार अपेक्षित होता है। हृदय कहीं वेग से उमड़ उठता है, कहीं वेग को न सँभाल सकने के कारण शिथिल पड़ जाता है, कहीं एकबारगी स्तब्ध हो जाता है। ये सब बातें भाषा में झलकनी चाहिए। 'शेष स्मृतियाँ' जिस शैली पर लिखी गई उसमें इन बातों की पूरी झलक है। कहीं कुछ दूर तक सम्बद्ध और बीच-बीच में उखड़े हुए वाक्य, कहीं छूटे हुए शून्य स्थल, कहीं अधूरे छूटे प्रसंग, कहीं वाक्य के किसी मर्म-स्पर्शी शब्द की आवृत्ति, ये सब लक्षण भावाकुल मनोवृत्ति का आभास देते हैं। इन्हें हम भाषा की भावभंगि कह सकते हैं।

प्रभाव-वृद्धि के लिए वाक्य के पदों का कहाँ कैसा स्थान विपर्य्यय करना चाहिए इसकी भी बहुत अच्छी परख लेखक महोदय को है जैसे—

"अपनी दशा को देखकर सुध आती है उन्हें उन करोड़ों मनुष्यों की जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ.......कुचली गई थीं।"

भावात्मक लेखों में शब्द की सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है। लक्षणा के द्वारा वाग्वैचित्र्य का सुन्दर और आकर्षक विधान प्रस्तुत पुस्तक में जगह जगह मिलता है जिससे भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार प्रकट होता है। काव्य तथा भावप्रधान गद्य में आजकल लक्षणा का पूरा सहारा लिया जाता है। आधुनिक अभिव्यंजना प्रणाली की सब से बड़ी विशेषता यही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसके द्वारा हमारी भाषा में बहुत-कुछ नई लचक, नया रंग और नया बल आया है। लाक्षणिक प्रयोग बहुत-से तथ्यों का मूर्त्त रूप में प्रत्यक्षी-करण करते हैं जो अधिक प्रभावपूर्ण और मर्मस्पर्शी होते हैं। पर जैसे और सब बातों में वैसे ही इसमें भी अति से बचने की आवश्यकता होती है। वाच्यार्थ का लक्ष्यार्थ के साथ कई पक्षों से अच्छा सामंजस्य देख कर तथा उक्ति की अर्थ-व्यंजकता और उसके मार्मिक प्रभाव को नाप-जोख कर ही कुशल लेखक चलते हैं। 'शेष स्मृतियाँ'

शाहजहाँ अपनी नई बसाई प्यारी दिल्ली में प्रवेश करने जमुना के उस पार से आ रहा है। जमुना के काले जल में क़िले की लाल दीवार और उसके ऊपर उठे हुए संगमरमर के सफ़ेद महलों की परछाहीं पड़ रही है। इन तीनों रंगों में हमारे भावुक महाराजकुमार को मुग़ल साम्राज्य की या दिल्ली की तीनों दशाओं का आभास इस प्रकार दिखाई पड़ता है—

"एकबारगी यमुना त्रिकाल-सम्बन्धी दृश्यों की त्रिवेणी बन गई, उत्थान की लाली, प्रताप का उजेला तथा अवसान की कालिमा, तीनों का सम्मिलित प्रतिबिम्ब उस महानदी में देख पड़ता था।"

जीवन-दशा के चित्रण के लिए कई स्थलों पर प्रकृति के नाना रूपों को लेकर बड़ी सुन्दर हेतूत्प्रेक्षाएँ मिलती हैं। जहाँगीर और अनारकली के प्रेम का दुःखपूर्ण अन्त हुआ यह इतिहास बतलाता है। वह विशाल और उज्ज्वल प्रेम मानो समस्त प्रकृति की शक्तियों से देखा न गया। सब-की-सब उसे ध्वस्त करने पर उद्यत हो गईं—

"आह! यह सुख उनसे देखा न गया। अनारकली को खिलते देख कर चाँद जल उठा, उस ईर्ष्याग्नि में वह दिन दिन क्षीण होने लगा। उषा ने अनारकली की मस्ती से भरी अलसाई हुई उन अधखुली पलकों को देखा और क्रोध के मारे उसकी आँख लाल लाल हो गई। गोधूली ने यह अपूर्व सुखद मिलन देखा और अपने अचिरस्थायी मिलन को याद कर उसने अपने मुख पर निराशा का काला घूंघट खींच लिया।"

महाराजकुमार के ये सब निबन्ध भावात्मक हैं यह तो स्पष्ट है। भावात्मक निबन्धों की दो शैलियाँ देखी जाती हैं—धारा-शैली और तरंग शैली। इन निबन्धों की तरंग-शैली है जिसे विक्षेप-शैली भी कह सकते हैं। यह भावाकुलता की उखड़ी-पुखड़ी शैली है। इसमें भावना लगातार एक ही भूमि पर समगति से नहीं चलती रहती; कभी इस वस्तु को, कभी उस वस्तु को पकड़ कर उठा करती है।

इस उठान को व्यक्त करने के लिए भाषा का चढ़ाव-उतार अपेक्षित होता है। हृदय कहीं वेग से उमड़ उठता है, कहीं वेग को न सँभाल सकने के कारण शिथिल पड़ जाता है, कहीं एकबारगी स्तब्ध हो जाता है। ये सब बातें भाषा में झलकनी चाहिए। 'शेष स्मृतियाँ' जिस शैली पर लिखी गई उसमें इन बातों की पूरी झलक है। कहीं कुछ दूर तक सम्बद्ध और बीच-बीच में उखड़े हुए वाक्य, कहीं छूटे हुए शून्य स्थल, कहीं अधूरे छूटे प्रसंग, कहीं वाक्य के किसी मर्म-स्पर्शी शब्द की आवृत्ति, ये सब लक्षण भावाकुल मनोवृत्ति का आभास देते हैं। इन्हें हम भाषा की भावभंगि कह सकते हैं।

प्रभाव-वृद्धि के लिए वाक्य के पदों का कहाँ कैसा स्थान विपर्य्यय करना चाहिए इसकी भी बहुत अच्छी परख लेखक महोदय को है जैसे—

"अपनी दशा को देखकर सुध आती है उन्हें उन करोड़ों मनुष्यों की जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ.......कुचली गई थीं।"

भावात्मक लेखों में शब्द की सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है। लक्षण के द्वारा वाग्वैचित्र्य का सुन्दर और आकर्षक विधान प्रस्तुत पुस्तक में जगह जगह मिलता है जिससे भाषा पर बहुत अच्छा अधि-कार प्रकट होता है। काव्य तथा भावप्रधान गद्य में आजकल लक्षणा का पूरा सहारा लिया जाता है। आधुनिक अभिव्यंजना प्रणाली की सब से बड़ी विशेषता यही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसके द्वारा हमारी भाषा में बहुत-कुछ नई लचक, नया रंग और नया बल आया है। लाक्षणिक प्रयोग बहुत-से तथ्यों का मूर्त्त रूप में प्रत्यक्षी-करण करते हैं जो अधिक प्रभावपूर्ण और मर्मस्पर्शी होते हैं। पर जैसे और सब बातों में वैसे ही इसमें भी अति से बचने की आवश्यकता होती है। वाच्यार्थ का लक्ष्यार्थ के साथ कई पक्षों से अच्छा सामंजस्य देख कर तथा उक्ति की अर्थ-व्यंजकता और उसके मार्मिक प्रभाव को नाप-जोख कर ही कुशल लेखक चलते हैं। 'शेष स्मृतियाँ'

पढ़ कर यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराजकुमार इसी निपुणता के साथ चले हैं।

प्रस्तुत निबन्धों में जड़ वस्तुओं में मानुषी सजीवता का आरोप हमें बराबर मिलता है। आधुनिक कविता तो अखिल प्रकृति के नाना दृश्यों को भी नर-प्रकृति के भीतरी-बाहरी रूप-रंग में देखा करती है। पर प्रकृति को सदा इसी संकुचित रूप में देखना व्यापक अनुभूति वालों को खटकता है। मगर महाराजकुमार ने मानुषी सजीवता का जो आरोप किया है वह खटकने वाला नहीं है। इसका कारण है। आपने जो विषय लिए हैं वे मनुष्य की कृतियाँ हैं। उनके रूप मनुष्य के दिए हुए रूप हैं। वे मानव जीवन के साथ सम्बद्ध हैं। उनकी अतीत शोभा, कान्ति, चमक-दमक इत्यादि कुछ मनुष्यों की सुख-समृद्धि के अंग हैं। इसी प्रकार उनकी वर्त्तमान हीन दशा उन मनुष्यों की हीन दशा के अंग हैं। उनकी भावना के साथ मनुष्य के सुख, उल्लास और विलास की अनुभूति तथा दुःख, दैन्य और नैराश्य की वेदना लगी हुई है।

"शाहजहाँ बेबस बैठा रो रहा था। अपने प्रेम को अपनी आँखों के सामने उसने मिट्टी में मिलते देखा। और तब....... उसने अपने दिल पर पत्थर रखकर अपनी प्रेयसी पर भी पत्थर जड़ दिए।"

'पत्थर रखना' एक ओर तो लाक्षणिक है, दूसरी ओर प्रस्तुत। दोनों का कैसा मार्मिक मेल यहाँ घटा है।

"उस नरक के वे कठोर पत्थर, अभागों के टूटे दिलों के वे घनीभूत पुंज भी रो पड़े।" इसमें भीतर और बाहर की बिम्ब-प्रतिबिम्ब स्थिति दिखाई गई है।

मूर्त्त रूप खड़ा करने के लिए जिस प्रकार भाववाचक शब्दों के स्थान पर कुछ वस्तुवाचक शब्द रखे जाते हैं उसी प्रकार कभी कभी लोकसामान्य व्यापक भावना उपस्थित करने के लिए व्यक्तिवाचक

या वस्तुवाचक शब्दों के स्थान पर उपादान लक्षणा के बल पर भाव-वाचक शब्द भी रखे जाते हैं। इस युक्ति से जो तथ्य रखा जाता है वह बहुत भव्य, विशाल और गंभीर होकर सामने आता है। इस युक्ति का अवलंबन हमें बहुत जगह मिलता है जैसे—

"तपस्या के चरणों में राज्यश्री ने प्रणाम किया।"

"दिल्ली के उस स्वर्ग की मस्ती गली-गली भटकती फिरी, मादकता हिंजड़ों के पैरों में लोटने लगी, विलासिता सूदखोर बनियों के हाथ बिकी।"

जड़ में सजीवता के आरोप के थोड़े से सुन्दर उदाहरण लीजिए—

"उन श्वेत पत्थरों में से आवाज़ आती है—'आज भी मुझे उसकी स्मृति है'।"

"उन पहाड़ियों की मस्ती फूट पड़ी, उनके भी उन ऊबड़-खाबड़ कठोर शुष्क कपोलों पर यौवन की लाली झलकने लगी।"

"वे भी दिन थे जब पत्थरों तक में यौवन फूट निकला था। जब बहुमूल्य रंगविरंगे सुन्दर रत्न भी उन कठोर निर्जीव पत्थरों से चिपटने को दौड़ पड़े......और चाँदी-सोने ने भी जब उनसे लिपट कर गौरव का अनुभव किया था।......उन श्वेत पत्थरों में भी वासना और आकांक्षाओं की रंगविरंगी भावनाएँ झलकती थीं। उन सुन्दर सुडौल पत्थरों के वे आभूषण, वे सच्चे सुकोमल सुगन्धित पुष्प भी उनसे चिमट कर भूल गए अपना अस्तित्व; उनके प्रेम में पत्थर हो गए।"

"हाँ! स्वर्ग ही तो था; पशु-पक्षी भी अनजान में जो वहाँ पहुँच गए तो वे भी मस्ती में बुत हो गए और स्वर्ग में ही रम गए। वे ही सुन्दर मयूर जो अपनी सुन्दरता का भार समेटे पीठ पर लादे फिरते हैं, काली घटा को देख उल्लास के मारे चीखते हैं, हरे हरे मैदानों पर स्वच्छन्द विचरते हैं,.....वे ही मयूर उस स्वर्ग में जाकर भारतीय सम्राट् के सिंहासन का भार उठाने को तैयार

हो गए और वह भी शताब्दियों तक।.....परन्तु उस सुन्दर लोक में उस काली घटा को देखने के लिए वे तरसने लगे; लाली देखते देखते हरियाली के लिए वे लालायित हो गए।......और जब भारत के कलेजे पर साँप लोट गया तब मयूर उस साँप को खाने के लिए दौड़ पड़े।......आक्रमणकारी के पीछे पीछे तख़्तताऊस उड़ा चला गया।"

भावुक लेखक की कुछ रमणीय और अनूठी उक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

"वह प्यासा हृदय प्रेम-जल की खोज में निकला।...... जीवन-प्रभात में ओस-रूपी स्वर्गीय प्रेमकणों को बटोरने के लिए वह पुष्प खिल उठा, पँखुड़ियाँ अलग अलग हो गईं।" इसमें प्रेम-वासना-पूर्ण हृदय की प्रफुल्लता का कैसा सुन्दर संकेत है।

कहीं कहीं महाराजकुमार ने भावना के स्वरूप की बहुत सूक्ष्म और सच्ची परख का परिचय दिया है। किसी प्राचीन स्थान पर पहुँचने पर उस स्थान से सम्बन्ध रखने वाले अतीत दृश्य कल्पना में खड़े होने लगते हैं; अतीत काल के व्यक्ति सामने चलते-फिरते-से जान पड़ने लगते हैं। यदि सन्नाटा और अँधेरा हुआ, वर्त्तमान काल के रूप-व्यापार सामने न आए तो यह कल्पना कुछ देर बनी रहती है। वर्त्तमान काल के रूप-व्यापार आँखों के सामने स्पष्ट होते ही उसमें बाधा पड़ती है, उसका भंग हो जाता है। रात के सन्नाटे और अँधेरे में भूतकाल का परदा उठ-सा जाता है; दिन के प्रकाश में मानो फिर काला परदा पड़ जाता है और भूतकाल के प्राणी दृष्टि से अन्तर्हित हो जाते हैं—

"उस सुनसान परित्यक्त महल में रात्रि के समय सुन पड़ती हैं उल्लासपूर्ण हास्य तथा विषादमय करुण क्रन्दन की प्रतिध्वनियाँ। वे अशांत आत्माएँ आज भी उन वैभवविहीन खंडहरों में घूमती हैं। ......किन्तु जब धीरे धीरे पूर्व में अरुण की लाली देख पड़ती

है, आसमान पर स्वच्छ नीला परदा पड़ने लगता है, तब पुनः इन महलों में वही सन्नाटा छा जाता है।"

साहित्य-समीक्षकों का कहना है कि कवि जिस क्षण में अनुभव करता है उस क्षण में तो लिखता नहीं। पीछे कालान्तर में स्मृति के आधार पर वह अपनी भावना व्यक्त करता है जो कुछ-न-कुछ विकृत अवश्य हो जाती है। इस बात का उल्लेख भी एक स्थल पर इस प्रकार मिलता है—

"आधुनिक लेखक तो क्या, उस स्वप्न के दर्शक भी, उसका पूरा पूरा जीता-जागता वृत्तान्त नहीं लिख सके। जिस किसी ने स्वयं यह स्वप्न देखा था, उसे ऐश्वर्य और विलास के उस उन्मादक दृश्य ने उन्मत्त कर दिया।......और जब नशा उतरा, कुछ होश हुआ, तव नशे की खुमारी के कारण लेखक की लेखनी में वह चंचलता, मादकता तथा स्फूर्ति न रही, जिनके बिना उस वर्णन में कोई भी आकर्षण या जीवन नहीं रहता है।"

मैं तो आश्चर्यपूर्वक देखता हूँ कि आपकी लेखनी में वही चंचलता, वही मादकता, वही स्फूर्ति है जो आपकी भावना में उस समय रही होगी जब आप उन पुराने खँडहरों पर खड़े रहे होंगे।

अपनी चिर पोषित और लालित भावनाओं को हृदय से निकाल कर इस बेढब संसार के सामने रखते हुए आपको कुछ मोह हुआ है; आप कुछ हिचके भी हैं—

"हाँ! अपने भावों को लुटाने निकला हूँ, परन्तु किस दिल से उन्हें कहूँ कि जाओ। यह सत्य है कि ये रही-सही स्मृतियाँ..... दिल में बहुत दर्द पैदा करती हैं, फिर भी वे अपनी वस्तु रही हैं। अपनी प्यारी वस्तु को विदा देते......आज खेद अवश्य होता है।......जानता हूँ कि वे पराये हो चुके हैं फिर भी उनको सर्वदा के लिए विदा करते दो आँसू ढलक पड़ते हैं। परन्तु आज सबसे अधिक भविष्य की चिन्ता सता रही है। अपने स्वप्नलोक

के अवशेष—वे भग्नावशेष ही क्यों न हों, हैं तो मेरे कल्पनालोक के खँडहर—मेरे हृदय के वे सुकोमल भाव, आज वे निराश्रय इस कठोर भौतिक जगत् में —इस कठोर लोक में जहाँ मानवीय भावों का कोई खयाल नहीं करता, मानवीय इच्छाओं तथा आकांक्षाओं का उपहास करना एक स्वाभाविक बात है।"

महाराजकुमार निश्चिन्त रहें। उनके इन सुकुमार भावों को कठोर संसार की जरा भी ठेस न लगेगी। ये हृदय के मर्मस्थल से निकले हैं और सहृदयों के शिरीष-कोमल अन्तस्तल में सीधे जाकर सुखपूर्वक आसन जमाएँगे।

दुर्गा कुंड, काशी
२६–७–१९३८

रामचन्द्र शुक्ल

शेष स्मृतियाँ

शेष स्मृतियाँ

स्मृतियाँ, स्मृतियाँ,......उन गए बीते दिनों की स्मृतियाँ, उन मस्तानी घड़ियों की याद, उस दीवाने जीवन के वे एकमात्र अवशेष, ...और उन अवशेषों के भी ध्वंसावशेष, विस्मृति के काले पट पर भी विलुप्त न हो सकने वाली स्मृतियाँ......। उनमें कितनी मादकता भरी होती है, कितनी कसक का उनमें अनुभव होता है, कितना दर्द वहाँ बिखरा पड़ा होता है ! सुख और दुःख का यह अनोखा सम्मिश्रण......उल्लास और आहें, विलास और दर्द की टीस, ऐश्वर्य तथा दारिद्रय का भीषण अट्टहास...... आह ! कितनी निश्वासें, कितनी उसासें निकली पड़ती हैं। वे ही दो आँखें और उन्हीं में सुख और दुःख के वे आँसू......।

परन्तु जीवन, मनुष्य का बीता हुआ जीवन......वह तो एक स्मृति है—समय द्वारा भग्न, सुख-दुःख द्वारा जर्जरित तथा मानवीय आकांक्षाओं और भावनाओं द्वारा छिन्न-भिन्न प्रासाद का एक करुणापूर्ण अवशेष है। और ऐसे अवशेषों पर वहता है समय का निस्सीम प्रवाह—प्रति दिन लहरें उठती हैं, ज्वार बढ़ता जाता है और मानव-जीवन के वे अवशेष, जलमग्न खण्डहर, संसार की आँखों से लुप्त पानी में ही अनायास गल गल कर नष्ट हो जाते हैं, और ......उनके स्थान पर रह जाती है स्मृतियों की मुट्ठी भर मिट्टी।

किन्तु उस मिट्टी में भी जीवन होता है; भावनाएँ और वासनाएँ उसे उद्दीप्त करती हैं; विस्मृति की शीतलता उसे शान्त करती है, और सुख-दुःख का भीषण अन्धड़ उन जीवन-कणों को बिखेर

कर पुनः शान्त हो जाता है। उन स्मृति-कणों की उपेक्षा कर, उन्हें बिखेर कर, उनको विनष्ट कर, समय शान्ति की निश्वास लेता है; किन्तु वे कण उन स्मृतियों पर बहाए गए सुख-दुःख के अश्रु-वारि से पुनः अंकुरित होते हैं, उन नव-अंकुरित कणों के आधार पर उठता है एक स्वप्नलोक और एक बार पुनः हम उन बीते दिनों की मादकता और कसक में डूबते उतराते हैं।

समय ने उपेक्षा की मनुष्य की, उसके जीवन के रंगमंच पर विस्मृति का प्रवाह बहा दिया, परन्तु उस प्रवाह के नीचे दबा हुआ भी वह अश्रुपूर्ण जीवन मानवीय जीवन को बनाए रखता है। समय, मनुष्य की इच्छाओं, आकांक्षाओं, उसके उस तड़पते हुए हृदय तथा महत्त्वाकांक्षापूर्ण मस्तिष्क को नष्ट कर सका, किन्तु विस्मृति के उस जीवनलोक में आज भी विचरती हैं उन गए बीते दिनों की सुधियाँ। जीवन को नष्ट कर सकने पर भी समय स्मृतियों के सौन्दर्य तथा मनुष्य के भोलेपन के भुलावे में आ गया। सुन्दरता, अकृत्रिम सुन्दरता और वह नैसर्गिक भोलापन......किसे इन्होंने आत्म-विस्मृत नहीं किया। कठोर-हृदय समय भी भूल गया अपनी कठोरता को अपने प्रलयंकारी स्वभाव को, और उस स्वप्नलोक में विचर कर वह स्वयं एक स्मृति बन गया।

× × ×

स्मृतियाँ, मनुष्य के स्वप्नलोक के, उसके उन सुखपूर्ण दिनों के भग्नावशेष हैं। इस भूलोक पर अवतरित होकर भी मनुष्य नहीं भूल सकता है उस सुन्दर स्वर्गीय स्वप्नलोक को। वह मृगतृष्णा, उस विशुद्ध कल्पनालोक में विचरण करने की वह इच्छा—जीवन भर दौड़ता है मनुष्य उस अदम्य इच्छा को तृप्त करने के लिए.... ..किन्तु स्वप्नलोक, ...वह तो मनुष्य से दूर खिंचता ही जाता है, और उसका वह मनोहारी आकर्षक दृश्य भुलावा दे दे कर ले जाता है मनुष्य को उस स्थान पर जहाँ वह स्वर्ग, कल्पना का

स्वर्ग, स्थायी नहीं हो सकता है। वह अचिरस्थायी स्वर्ग भंग हो कर मनुष्य को आहत कर उसे भी नष्ट कर देता है।

किन्तु उस स्वप्नलोक में, भावनाओं के उस स्वर्ग में एक आकर्षण है, एक मनमोहक जादू है, जो मनुष्य को अपनी ओर वरवस खींचे जाता है। और उस स्वप्नलोक की वे स्मृतियाँ, उसकी वह दुःखद करुण कहानी, उसके भग्न होने की वह व्यथापूर्ण कथा,... ....उसकी असारता को जानते हुए भी मनुष्य उसी ओर खिंचा चला जाता है।

वे स्मृतियाँ, भग्नाशाओं के वे अवशेष......कितने उन्मादक होते हैं ? प्रेम की उस करुण कहानी को देख कर न जाने क्यों आँखों में आँसू भर आते हैं। और उन भग्न खण्डहरों में घूमते घूमते दिल में तूफ़ान उठता है, दो आहें निकल पड़ती हैं, उसासें भर जाती हैं, आँसू ढलक पड़ते हैं और......। उफ़ ! इन खण्डहरों में भी जादू भरा है; समय को भुलावा दे कर, अव वे मनुष्य को भुलावा देने का प्रयत्न करते हैं। भग्न स्वप्नलोक के, टूटे हुए हृदय के, उजड़े स्वर्ग के उन खण्डहरों ने भी एक नए मानवीय कल्पनालोक की सृष्टि की। हृदय तड़पता है, मस्तिष्क पर वेहोशी छा जाती है, स्मृतियों का ववण्डर उठता है, भावों का प्रवाह उमड़ पड़ता है, आँखें डवडवा कर अंधी हो जाती हैं, और अव...... विस्मृति की वह मादक मदिरा पीकर......नहीं समझ पड़ता है कि किधर वहा जा रहा हूँ। धमनियों में कम्पन हो रहा है, दिल धड़कता है, मस्तिष्क में एक नवीन स्फूर्ति का अनुभव होता है......। पागलपन ? मस्ती ? दीवानापन ? कुछ भी समझ में नहीं आता है कि क्या हो गया मुझे ? और कहाँ ? किधर ? ......यहाँ तो कुछ भी नहीं सूझ पड़ता।

परन्तु.....अरे ! धीरे धीरे उठ रही है विस्मृति की वह काली यवनिका, धीरे धीरे लुप्त हो रहा है भूत को वर्त्तमान से विलग करने

वाला वह कुहरा। देखता हूँ इन करुण स्मृतियों के वे मस्ताने दिन, उनका वह उत्थान और उन्हीं का यह अन्त। इठलाते हुए नवयुवा साम्राज्य के युवा सम्राट् अकबर का वह मदभरा छलकता हुआ यौवन, वह मस्तानी अदा—पागल कर देती है अब भी उसकी स्मृति। संसार पड़ा लोट रहा था उसके चरणों में, यौवन-साक़ी मदिरा का प्याला भर रहा था, राज्यश्री उसके सम्मुख नृत्य कर रही थी। किन्तु रूठ गया वह प्रेमी अपनी प्रेयसी नगरी से, और सधवापने में उस नगरी ने विधवा वेष पहिन लिया। लुटा दिया उसने अपना वह वैभव, टुकड़े टुकड़े कर डाले अपने रंगबिरंगे वस्त्र पट, चीर डाला अपना वक्षःस्थल और अपने भग्न हृदय को अपने प्रेमी के चरणों में चढ़ा कर मृत्यु से आलिंगन किया। परन्तु उसकी माँग का सिंदूर, सधवावस्था का वह एकमात्र चिन्ह, और उसके मस्ताने यौवन की वह मादकता, आज भी उस भग्न नगरी के वे अवशेष उनकी लाली में रँगे हुए हैं।

और तब......जहाँगीर की वह प्रथम प्रेम-कहानी, उस अनारकली का प्रस्फुटन तथा उसका कुचला जाना, विनष्ट किया जाना; नूरजहाँ की उठती हुई जवानी तथा जहाँगीर के टूटे हुए दिल पर निरन्तर किए जाने वाले वे कठोर आघात......। जहाँगीर प्याले पर प्याला ढाल रहा था, किन्तु अपने हृदय की वेदना को, कसक को नहीं भूल सकता था। उनका वह अस्थायी मिलन, कुछ ही दिनों की वे सुखद घड़ियाँ, तथा उनका वह चिर वियोग....। वे तड़पती हुई आत्माएँ प्रेमसागर में नहाकर भी शान्त नहीं हुईं, और आज भी छाती पर पत्थर रखे, अपने अपने विद्रोही हृदयों को दबाए हुए हैं।

शाहजहाँ की वह सुहागरात गुज़र गई आँखों के सामने से। वह प्रथम मिलन, आशा-निराशा के उस कम्पनशील वातावरण में वह सुखपूर्ण रात,.....छलक पड़ा वह यौवन, बिखर गया वह सुख

और निखर गई मस्ताने यौवन की वह लाली—उसने रँग दिया उसके समस्त जीवन को। किन्तु......अरे ! यह क्या ? लाली का रंग उड़ता जाता है, वह यौवन छोड़ कर चल देता है, वह मस्ती लौट कर नहीं आती। ज्यों ज्यों जीवन-अर्क ऊँचा चढ़ता जाता है, त्यों त्यों लाली श्वेतता में परिवर्तित होती जाती है। और जब लुटा वह प्रेमलोक......ताज़ सिर पर धरा था, किन्तु डाल दिया उसे प्रेयसी के चरणों में, और लुटा दिया अपना रहा-सहा सुख भी। शाहजहाँ बेवस बैठा रो रहा था। अपने प्रेम को अपनी आँखों के सामने उसने मिट्टी में मिलते देखा। और तब......उसने अपने दिल पर पत्थर रख कर अपनी प्रेयसी पर भी पत्थर जड़ दिए।

किन्तु सबसे अधिक मोहक था वह भौतिक स्वर्ग, जिसको जहान के शाह ने बनवाया था, जिसको जमुना ने अपने दिल के पानी से ही नहीं सींचा था, किन्तु जिसे राज्यश्री ने भी अभिसिंचित किया था। वहाँ......सौरभ, संगीत और सौन्दर्य का चिरप्रवाह बहता था; दुःख भूले-भटके भी नहीं आने पाता था। प्रेमरस के वे सुन्दर जगमगाते हुए स्फटिक प्याले,......प्याले शताब्दियों तक ढले, उनमें जीवनरस उँडेला गया और वहीं मस्ती का नग्न नृत्य भी हुआ। परन्तु एक दिन मदिरा की लाली को मानव रुधिर की लाली ने फीका कर दिया, जीवनरस को सुखाने के लिए मृत्यु-रूपी हलाहल ढला, मस्ती को विवशता ने निकाल बाहर किया, मादकता को करुणा ने धक्के दिए, और अन्त में उस स्वर्ग ने अपने खण्डहर देखे, बाल्यकाल की चीखें सुनीं, अपने यौवन को सिसकते देखा, बूढ़ों की निश्वासों की हुताग्नि में रही-सही अपनी मादकता को जल-भुन कर खाक होते देखा। आह ! स्वर्ग उजड़ गया, यमुना का प्रेमसोता सूख गया, उसने मुख मोड़ लिया ; और उस स्वर्ग के वे देवता, उस सुखलोक के वे उपभोक्ता,—उन खण्डहरों को एक

नज़र देख कर वे भी चल दिए......चल दिए, छोड़ कर चल दिए। स्वर्गने दो हिचकियों में दम तोड़ा, और उस मृत भग्न स्वर्ग को, उस मस्ताने मदमाते स्वर्ग के उस निर्जीव निश्चेष्ट शव को देख कर ढलक पड़े दो आँसू !

दो आँसू ? हाँ ! गरम गरम तपतपाए हुए दो आँसू, निश्वास की भट्टी में तपे हुए वे अश्रुकण......आह ! ये आँसू भी इन आँखों को छोड़ कर चल दिए। और साथ ही साथ......अरे ! मेरा स्वप्नलोक भी भग्न हो गया; उन आँसुओं ने उस स्वर्ग को वहा दिया, ...कुछ होश सा होता है, कुछ खयाल आता है, कहाँ था अब तक ? स्वप्नलोक में स्वर्ग को उजड़ते देखा था। आह ! स्वप्न में भी स्वर्ग चिरस्थायी नहीं हो सका। स्वप्नलोक में भी वही रोना। मानवीय आकांक्षाएँ भग्न होती हैं, निराशाएँ मुँह वाए उनका सामना करती हैं, कठोर निर्जीव जीवन उस स्वर्ग को तोड़-फोड़ डालता है, तथापि स्वप्न देखने की यह लत ! इतने कठोर सत्यों का अनुभव कर, उन करुणा-जनक दृश्यों को देख कर भी पुनः उन सुखपूर्ण दिनों की याद करना। स्वप्नलोक में विचरने का वह प्रलोभन, तथा मस्ती लाने वाली विस्मृति-मदिरा को एक बार मुँह से लगा कर ठुकरा देना......इतनी कठोरता......दिल नहीं कर सकता है ऐसी निष्ठुरता।

परन्तु मेरा वह स्वप्नलोक, मेरे आश्चर्य तथा आनन्द की वस्तु, अरे ! वह भंग हो गया। स्वप्न में भी भौतिक स्वर्ग को उजड़ते देखा, उसके खण्डहरों का करुणापूर्ण रुदन सुना, उसकी वे मर्माहत निश्वासें सुनी, और उनके साथ ही मैं भी रो पड़ा। उजड़ गया है मेरा स्वप्न-लोक, और आज जब होश सा होता है तो मालूम होता है कि मैं स्वयं भी लुट चुका हूँ।

उस प्रिय लोक की वे कोमल सुधियाँ, उसके एकमात्र अवशेष, वे सुखद या करुणाजनक स्मृतियाँ---अरे ! उन्हें भी लूट ले गया यह

कठोर निष्ठुर भौतिक जगत । आज तक मैं स्वप्न देखता था, उसका आनन्द उठाता था, हँसता था, रोता था, सिर पीट कर लोटता था, सिसकता था, किन्तु ये सब भाव मेरे अपने थे । उन्हें मैं अपने हृदय में, अपने दिल के पहलू में, उन्हें अपनी एकमात्र निधि समझे छिपाए रखता था । कितनी आराधना के बाद उस स्वप्नलोक का आविर्भाव हुआ था, और उस स्वप्न को देखने में, अपने उस प्यारे लोक में विचरते विचरते कितने दिन रात और कितनी रातें दिन हो गई थीं । और इस प्यार से पाले पोसे गए उस मस्ताने पागलपन के वे विचार, उन दिनों के वे भाव जब अनेक बार जी ललच कर रह जाता था, जब वासनाएँ उद्दाम होने को छटपटाती थीं, जब आकांक्षाएँ मुक्त होने को तड़पती थीं, जब उस स्वप्नलोक में विचर विचर कर मैं भी उन महान् प्रेमियों के प्रेम तथा उनके जीवन के मादक और करुणाजनक दृश्य देखता था, उनके साथ उल्लासपूर्वक कल्लोल करता था, उन्हीं के दर्द से·दुखी रोता था, आँसू बहाता था । किन्तु वे दिन......अब स्वप्न हो गए; और उन दिनों की स्मृतियाँ—उन अनोखे दिनों की एकमात्र यादगार—भी अब मेरी अपनी न रहीं । उस मस्ती में उस बेहोशी में मैं न जाने क्या क्या बक गया—और जो भाव अब तक मेरे हृदय में छिपे पड़े थे उनको संसार ने जान लिया, उन्हें संसार ने अपना लिया । जो आज तक मेरे अपने थे वे अब पराए हो गए । आज भी उन्हें पढ़ कर वे ही पुराने दिन याद आ जाते हैं; उस स्वप्नलोक का वह आरम्भ और उसका यह अन्त ! और जब फिर सुध हो जाती है उन दिनों की, तब पुनः मस्ती चढ़ती है या दर्द के मारे कसकता हूँ । परन्तु अब वे पराए हो गए तो रहे-सहे का मोह छोड़ कर सब कुछ खुले हाथों लुटाने निकला हूँ आज ।

हाँ ! अपने भावों को लुटाने निकला हूँ, परन्तु फिर भी किस दिल से उन्हें कहूँ कि जाओ । बरसों का साथ छूट रहा है । यह सत्य है कि ये रही-सही स्मृतियाँ अपने भग्न स्वप्नलोक की याद दिला कर

हृदय में दुःख का प्रवाह उमड़ा देती हैं, वे दिल में बहुत दर्द पैदा करती हैं, फिर भी वे मेरी अपनी वस्तु रही हैं। अपनी प्यारी वस्तु को विदा देते, अपने हृदय में जिसे एक बार आश्रय दिया था, बड़े आदर तथा प्रेम से जिसे हृदय में छिपाए रखा था, उससे बिलगते.....आह ! आज खेद अवश्य होता है।.....जानता हूँ कि वे पराए हो चुके हैं, फिर भी आज उनको सर्वदा के लिए विदा करते दो आँसू ढलक पड़ते हैं। अब किन्हें मैं अपनी एकमात्र सम्पत्ति समझूँगा ? किन्हें अपनी वस्तु जान कर दिल में छिपाए फिरूँगा, और संसार से छिपा छिपा कर एकान्त में उन्हें बार बार देख कर तथा उन्हें अपने हृदय में स्थित जान कर स्वयं को भाग्यवान् व्यक्ति समझूँगा ?

बिदा ! अल्विदा ! अब कहाँ तक यह लाग लपेट ? परन्तु जब जुदा हो रहे हैं, ममता लिपट रही है, बेबसी खड़ी रो रही है, करुणा बेहोश पड़ी सिसक रही है और ......मेरा दुर्भाग्य, वह तो खड़ा मुस्कराता ही जाता है। परन्तु आज तो सबसे अधिक भविष्य की चिन्ता सता रही है। विचार मात्र से ही दिल दहल उठता है। अपने स्वप्न-लोक के अवशेष—वे भग्नावशेष ही क्यों न हों, हैं तो मेरे कल्पनालोक के खण्डहर,—मेरे हृदय के वे सुकोमल भाव, आज वे निराश्रय इस कठोर भौतिक जगत में—इस कठोर लोक में जहाँ मानवीय भावों का कोई ख़याल नहीं करता, मानवीय इच्छाओं तथा आकांक्षाओं का उपहास करना एक स्वाभाविक बात है, जहाँ मानवीय हृदय के साथ खेल करने में ही आनन्द आता है, तड़पते हुए आहत हृदय पर चोट करना मनो-रंजन की एक सामग्री है......ओह ! अब आगे कुछ भी नहीं सोच सकता।

बिदा तो दे चुका हूँ परन्तु उनके आश्रय के लिए किससे कहूँ ? क्या कहूँ ? कुछ कहने से भी क्या होगा ? उनके साथ अब मेरा क्या सम्बन्ध रह गया है ? और जब वे पराए हो चुके हैं.....परन्तु,

हाँ ! फिर भी अपनी सदिच्छाओं को तो उनके साथ इस संसार में भेज सकता हूँ । अधिक नहीं तो यही सही । सो अव अन्तिम विदा !

"भवन्तु शुभास्ते पन्थानः" ।

"रघुबीर निवास,"
सीतामऊ
२३ मार्च, १९३४

रघुबीरसिंह

पुनश्चः—

बरस पर बरस बीतते गए; बिदा देकर भी मैं अपनी इन "शेष स्मृतियों" को अपने पास से अलग न कर सका । जी कड़ा कर प्रयत्न करने पर भी उन्हें संसार में एकाकी विचरने का आदेश न दे सका । और जव संसार ने तकाज़ा किया तो मैं इनके लिए एक अभिभावक की खोज में निकला । आचार्य-प्रवर पं० रामचन्द्र जी शुक्ल का मैं हृदय से अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने अपनी लिखी हुई 'प्रवेशिका' को इनके साथ भेजने का आयोजन कर दिया है । मेरी मानवीय दुर्बलता का लिहाज़ कर पाठकगण इस अवांछनीय देरी के लिए मुझे क्षमा करें, यही एक प्रार्थना है ।

"रघुवीर निवास,"
सीतामऊ
५ मई, १९३९

रघुवीरसिंह

ताज

ताज

मनुष्य को स्वयं पर गर्व है। वह स्वयं को जगदीश्वर की अत्युत्तम तथा सर्वश्रेष्ठ कृति समझता है। वह अपने व्यक्तित्व को चिरस्थायी बनाया चाहता है। मनुष्य जाति का इतिहास क्या है? उसके सारे प्रयत्नों का केवल एक ही उद्देश्य है। चिरकाल से मनुष्य यही प्रयत्न कर रहा है कि किसी प्रकार वह उस अप्राप्य अमृत को प्राप्त करे, जिसे पीकर वह अमर हो जाय। किन्तु अभी तक उस अमृत का पता नहीं लगा। यही कारण है कि जब मनुष्य को प्रति दिन निकटतम आती हुई रहस्यपूर्ण मृत्यु की याद आ जाती है, तब उसका हृदय बेचैनी के मारे तड़पने लगता है। भविष्य में आने वाले अपने अन्त के तथा उसके अनन्तर अपने व्यक्तित्व के ही नहीं, अपने सर्वस्व के, विनष्ट होने के विचार मात्र से ही मनुष्य का सारा शरीर सिहर उठता है। वह चाहता है कि किसी भी प्रकार इस अप्रिय कठोर सत्य को वह भूल जाय, और उसे ही भुलाने के लिए, अपनी स्मृति से, अपने मस्तिष्क से उसे निकाल बाहर करने ही को कई बार मनुष्य सुख-सागर में मग्न होने की चेष्टा करता है। कई व्यक्तियों का हृदय तो इस विचार मात्र से ही विकल हो उठता है कि समय के उस भयानक प्रवाह में वे स्वयं ही नहीं, किन्तु उनकी समग्र वस्तुएँ, स्मृतियाँ, स्मृति-चिह्न आदि सब कुछ बह जायँगे; इस संसार में तब उनके सांसारिक जीवन का चिह्न मात्र भी न रहेगा और उनको याद करने वाला भी कोई न मिलेगा। ऐसे मनुष्य इस भौतिक संसार में अपनी स्मृतियाँ—अमिट स्मृतियाँ—छोड़ जाने को विकल हो उठते हैं। वे जानते हैं कि उनका अन्त अवश्यम्भावी है,

किन्तु सोचते हैं कि सम्भव है उनकी स्मृतियाँ संसार में रह जाँय। पिरेमिड, स्फ़िंक, बड़े बड़े मक़बरे, कीर्तिस्तम्भ, कीलियाँ, विजय-द्वार, विजय-तोरण आदि कृतियाँ मनुष्य की इसी इच्छा के फल हैं। एक तरह से देखा जाय तो इतिहास भी अपनी स्मृति को चिरस्थायी बनाने की मानवीय इच्छा का एक प्रयत्न है। यों अपनी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए मनुष्य ने भिन्न भिन्न प्रयत्न किए; किसी ने एक मार्ग का अवलम्बन किया, किसी ने दूसरी राह पकड़ी। कई एक विफल हुए; अनेकों के ऐसे प्रयत्नों का आज मानव-समाज की स्मृति पर चिह्न तक विद्यमान नहीं है। बहुतों के तो ऐसे प्रयत्नों के खण्डहर आज भी संसार में यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। वे आज भी मूक भाव से मनुष्य की इस इच्छा को देख कर हँसते हैं और साथ ही रोते भी हैं। मनुष्य की विफलता पर तथा अपनी दुर्दशा पर वे आँसू गिराते हैं। परंतु यह देख कर कि अभी तक मनुष्य अपनी विफलता का अनुभव नहीं कर पाया, अभी तक उसकी वही इच्छा, उसकी वही दुराशा उसका पीछा नहीं छोड़ती है, मनुष्य अभी तक उन्हीं के चंगुल में फँसा हुआ है, वे मूकभाव से मनुष्य की इस अद्‌भुत मृगतृष्णा पर विक्षिप्त कर देने वाला अट्‌टहास करते हैं।

परन्तु मनुष्य का मस्तिष्क विधाता की एक अद्वितीय कृति है। यद्यपि समय के सामने किसी की भी नहीं चलती, तथापि कई मस्तिष्कों ने ऐसी ख़ूबी से काम किया, उन्होंने ऐसी चालें चलीं कि समय के इस प्रलयंकारी भीषण प्रवाह को भी बाँधने में वे समर्थ हुए। उन्होंने काल को सौन्दर्य के अदृश्य किन्तु अचूक पाश में बाँध डाला है; उसे अपनी कृतियों की अनोखी छटा दिखा कर लुभाया है; यों उसे भुलावा देकर कई बार मनुष्य अपनी स्मृति के ही नहीं, किन्तु अपने भावों के स्मारकों को भी चिरस्थायी बना सका है। ताजमहल भी मानव मस्तिष्क की ऐसी ही अद्वितीय सफ़लता का एक अद्भुत उदाहरण है। किन्तु सौन्दर्य का वह अचूक पाश......समय

के साथ मनुष्य भी उसमें बँध जाता है; समय का प्रलयंकारी प्रवाह रुक जाता है, किन्तु मनुष्य के आँसुओं का सागर उमड़ पड़ता है; समय स्तब्ध होकर अब भी उस समाधि को ताक रहा है । सूरज निकलता और अस्त हो जाता है, चाँद घटता और बढ़ता है, किन्तु ताज की वह नव-नूतनता आज भी विद्यमान है; शताब्दियों से बहने वाले आँसू ही उस सुन्दर समाधि को धो धोकर उसे उज्ज्वल बनाए रखते हैं ।

× × ×

वह अंधकारमयी रात्रि थी । सारे विश्व पर घोर अंधकार छाया हुआ था, तो भी जग सोया न था । संसार का ताज, भारतीय साम्राज्य का वह जगमगाता हुआ सितारा, भारत-सम्राट् के हृदय-कुमुद का वह समुज्ज्वल चाँद आज सर्वदा के लिए अस्त होने को था। शिशु को जन्म देने में माता की जान पर आ बनी थी । स्नेह और जीवन की अन्तिम घड़ियाँ थीं; उन सुखमय दिनों का, प्रेम तथा आल्हाद से पूर्ण छलकते हुए उस जीवन का अब अन्त होने वाला था । संसार कितना अचिरस्थायी है !

वह टिमटिमाता हुआ दीपक, भारत-सम्राट् के स्नेह का वह जलता हुआ चिराग़ बुझ रहा था । अब भी स्नेह बहुत था, किन्तु अकाल काल का झोंका आया; वह झिलमिलाती हुई लौ उसे सहन नहीं कर सकी । धीरे धीरे प्रकाश कम हो रहा था; दुर्दिन की काली घटाएँ उस रात्रि के अन्धकार को अधिक कालिमामय बना रही थीं; आशा-प्रकाश की अन्तिम ज्योति-रेखाएँ निराशा के उस अन्धकार में विलीन हो रही थीं । और तब......सब अँधेरा ही अँधेरा था ।

इस सांसारिक जीवन-यात्रा की अपनी सहचरी, प्राणप्रिया से अन्तिम भेंट करने शाहजहाँ आया । जीवन-दीपक बुझ रहा था, फिर भी अपने प्रेमी को, अपने जीवन-सर्वस्व को देख कर पुनः

एक वार लौ बढ़ी; बुझने से पहले की ज्योति हुई, मुमताज़ के नेत्र खुले। अन्तिम मिलाप था। उन अन्तिम घड़ियों में, उन आँखों द्वारा क्या क्या मौनालाप हुआ होगा, उन प्रेमियों के हृदयों में कितनी उथल-पुथल मची होगी, उसका कौन वर्णन कर सकता है? प्रेमाग्नि से धधकते हुए उन हृदयों की वे बातें लेखक की यह कठोर लेखनी काली स्याही से पुते हुए मुँह से नहीं लिख सकती।

अन्तिम क्षण थे, सर्वदा के लिए वियोग हो रहा था; देखती आँखों शाहजहाँ का सर्वस्व लुट रहा था और वह भारत-सम्राट् हताश हाथ पर हाथ धरे बेबस बैठा अपनी किस्मत को रो रहा था। सिंहासनारूढ़ हुए कोई तीन वर्ष भी नहीं बीते थे कि उसकी प्रियतमा इस लोक से बिदा लेने की तैयारी कर रही थी। शाहजहाँ की समस्त आशाओं पर उसकी सारी उमंगों पर पाला पड़ रहा था। क्या क्या उम्मीदें थीं, क्या क्या अरमान थे? जब समय आया, उनके पूर्ण होने की आशा थी, तभी शाहजहाँ को उसकी जीवन-संगिनी ने छोड़ दिया। ज्योंही सुख-मदिरा का प्याला ओंठों को लगाया कि वह प्याला अनजाने गिर पड़ा, चूर चूर हो गया और वह सुख-मदिरा मिट्टी में मिल गई, पृथ्वीतल में समा गई, सर्वदा के लिए अदृश्य हो गई।

हाय! अन्त हो गया, सर्वस्व लुट गया। परम प्रेमी, जीवन-यात्रा का एकमात्र साथी सर्वदा के लिए छोड़ कर चल बसा। भारत-सम्राट् शाहजहाँ की प्रेयसी, सम्राज्ञी मुमताज़महल सदा के लिए इस लोक से बिदा हो गई। शाहजहाँ भारत का सम्राट् था, जहान का शाह था, परन्तु वह भी अपनी प्रेयसी को जाने से नहीं रोक सका। दार्शनिक कहते हैं, जीवन एक बुदबुदा है, भ्रमण करती हुई आत्मा के ठहरने की एक धर्मशाला मात्र है। वे यह भी बताते हैं कि इस जीवन का संग तथा वियोग क्या है—एक प्रवाह में संयोग से साथ बहते हुए लकड़ी के टुकड़ों के साथ तथा विलग होने की कथा है।

परन्तु क्या ये विचार एक संतप्त हृदय को शान्त कर सकते हैं ? क्या ये भावनाएँ चिरकाल की विरहाग्नि में जलते हुए हृदय को सान्त्वना प्रदान कर सकती हैं ? सांसारिक जीवन की व्यथाओं से दूर बैठा हुआ जीवन-संग्राम का एक तटस्थ दर्शक चाहे कुछ भी कहे, किन्तु जीवन के इस भीषण संग्राम में युद्ध करते हुए सांसारिक घटनाओं के घोर थपेड़े खाते हुए हृदयों की क्या दशा होती है, यह एक भुक्तभोगी ही वता सकता है ।

× × ×

वह चली गई, सर्वदा के लिए चली गई । अपने रोते हुए प्रेमी को, अपने जीवन-सर्वस्व को, अपने बिलखते हुए प्यारे बच्चों को तथा समग्र दुःखी संसार को छोड़ कर उस अँधियारी रात में न जाने वह कहाँ चली गई । चिरकाल का वियोग था । शाहजहाँ की आँख से एक आँसू ढलका, उस सन्तप्त हृदय से एक आह निकली ।

वह सुन्दर शरीर पृथ्वी की भेंट हो गया; यदि कुछ शेष था तो उसकी वह सुखप्रद स्मृति, तथा उसकी स्मृति पर उसके उस चिर वियोग पर आहें, निश्वासें और आँसू । संसार लुट गया और उसे पता भी न लगा । संसार की वह सुन्दर मूर्त्ति मृत्यु के अदृश्य क्रूर हाथों चूर्ण हो गई; और उस मूर्त्ति के वे निर्जीव अवशेष ! ...... जगन्माता पृथ्वी ने उन्हें अपने अंचल में समेट लिया ।

शाहजहाँ के वे आँसू तथा वे आहें विफल न हुईं । उन तप्त आंखों तथा उस धधकते हुए हृदय से निकल कर वे इस वाह्य जगत में आए थे । वे भी समय के साथ सर्द होने लगे । समय के ठंडे झोंकों की थपकियाँ खाकर उन्होंने एक ऐसा सुन्दर स्वरूप धारण किया कि आज भी उन्हें देखकर न जाने कितने आँसू ढलक पड़ते हैं, और न जाने कितने हृदयों में हलचल मच जाती है । अपनी प्रेयसी के वियोग पर वहाए गए शाहजहाँ के वे आँसू चिरस्थायी हो गए ।

सब कुछ समाप्त हो गया था, किन्तु अब भी एक आशा शेष रही थी। शाहजहाँ का सर्वस्व लुट गया था, तो भी उस स्तब्ध रात्रि में अपनी प्रियतमा के प्रति, उस अन्तिम भेंट के समय किए गए अपने प्रण को वह नहीं भूला था। उसने सोचा कि अपनी प्रेयसी की याद-गार में, भारत के ही नहीं संसार के उस चाँद की उन शुष्क हड्डियों पर एक ऐसी क़ब्र बनावे कि वह संसार भर के मक़बरों का ताज हो। शाहजहाँ को सूझी कि अपनी प्रेयसी की स्मृति को तथा उसके प्रति अपने अगाध विशुद्ध प्रेम को स्वच्छ श्वेत स्फटिक के सुचारु स्वरूप में व्यक्त करे।

धीरे धीरे भारत की उस पवित्र महानदी यमुना के तट पर एक मक़बरा बनने लगा। पहले लाल पत्थर का एक चबूतरा बनाया गया; उस पर सफेद संगमरमर का ऊँचा चौतरा निर्माण किया गया, जिसके चारों कोनों पर चार मीनार बनाए गए जो बेतार के तार से चारों दिशाओं में उस सम्राज्ञी की मृत्यु का समाचार सुना रहे हैं और साथ ही उसका यशोगान भी कर रहे हैं। मध्य में शनैः शनैः मक़बरा उठा। यह मक़बरा भी उस श्वेत वर्ण वाली सम्राज्ञी के समान श्वेत तथा उसी के समान सौन्दर्य में अनुपम तथा अद्वितीय है। अंत में उस भव्य मक़बरे को एक अतीव सुन्दर सुडौल महान् गुम्बज़ का ताज पहनाया गया।

पाठको! उस सुन्दर मक़बरे का वर्णन पार्थिव जिह्वा भी नहीं कर सकती, फ़िर इस बेचारी जड़ लेखनी का क्या? अनेक शताब्दियाँ बीत गईं, भारत में अनेकानेक साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ। भारत की वह सुन्दर कला, तथा उस महान् समाधि के वे अज्ञात निर्माणकर्त्ता भी समय के अनन्त गर्भ में न जाने कहाँ विलीन हो गए; परन्तु आज भी वह मक़बरा खड़ा हुआ अपने सौन्दर्य से संसार को लुभा रहा है। समय तो उसके पास फटकने भी नहीं पाता कि उसकी नूतनता को हर सके, और मनुष्य.....बेचारा

मर्त्य, वह तो उस मक़बरे के तले बैठा सिर धुनता रहा है। यह मक़बरा शाहजहाँ की उस महान् साधना का, अपनी प्रेमिका के प्रति उस अनन्य तथा अगाध प्रेम का फल है। वह कितना सुन्दर है? वह कितना करुणोत्पादक है? आँखें ही उसकी सुन्दरता को देख सकती हैं, हृदय ही उसकी अनुपम सुकोमल करुणा का अनुभव कर सकता है। संसार उसकी सुन्दरता को देख कर स्तब्ध है, सुखी मानव जीवन के इस करुणाजनक अन्त को देख कर क्षुब्ध है। शाहजहाँ ने अपनी मृता प्रियतमा की समाधि पर अपने प्रेम की अंजलि अर्पण की, तथा भारत ने अपने महान् शिल्पकारों और चतुर कारीगरों के हाथों शुद्ध प्रेम की उस अनुपम और अद्वितीय समाधि को निर्माण करवा कर पवित्र प्रेम की वेदी पर जो अपूर्व श्रद्धाञ्जलि अर्पित की उसका सानी इस भूतल पर खोजे नहीं मिलता।

× × ×

बरसों में परिश्रम के बाद अन्त में मुमताज़ का वह मक़बरा पूर्ण हुआ। शाहजहाँ की वर्षों की साध पूरी हुई। एक महान् यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। इस मक़बरे के पूरे होने पर जब शाहजहाँ बड़े समारोह के साथ उसे देखने गया होगा, आगरे के लिए वह दिन कितना गौरवपूर्ण हुआ होगा। उस दिन का —भारत की ही नहीं संसार की शिल्पकला के इतिहास के उस महान् दिवस का—वर्णन इतिहासकारों ने कहीं भी नहीं किया है। कितने सहस्त्र नर-नारी आबाल-वृद्ध उस दिन उस अपूर्व मक़बरे के —संसार की उस महान् अनुपम कृति के—दर्शनार्थ एकत्रित हुए होंगे? उस दिन मक़बरे को देख कर भिन्न भिन्न दर्शकों के हृदयों में कितने विभिन्न भाव उत्पन्न हुए होंगे? किसी को इस महान् कृति की पूर्ति पर हर्ष हुआ होगा, किसी ने यह देख कर गौरव का अनुभव किया होगा कि उनके देश में एक ऐसी वस्तु का निर्माण हुआ है जिसकी तुलना करने के लिए संसार में कदाचित् ही दूसरी कोई वस्तु मिले; कई एक उस

मक़बरे की छबि को देख कर मुग्ध हो गए होंगे; न जाने कितने चित्रकार उस सुन्दर कृति को अंकित करने के लिए चित्रपट, रंग की प्यालियाँ और तूलिकाएँ लिये दौड़ पड़े होंगे; न जाने कितने कवियों के मस्तिष्क में कैसी कैसी अनोखी सूझें पैदा हुई होंगी।

परन्तु सब दर्शकों में से एक दर्शक ऐसा भी था जिसके हृदय में भिन्न भिन्न विपरीत भावों का घोर युद्ध भी हुआ था। दो आँखें ऐसी भी थीं, जो मक़बरे की उस बाह्य सुन्दरता को चीरती हुई एक-टक उस क़ब्र पर ठहरती थीं। वह दर्शक था शाहजहाँ, वे आँखें थीं मुमताज़ के प्रियतम की आँखें। जिस समय शाहजहाँ ने ताज के उस अद्वितीय दरवाज़े पर खड़े होकर उस समाधि को देखा होगा उस समय उसके हृदय की क्या दशा हुई होगी, यह वर्णन करना अतीव कठिन है। उसके हृदय में शान्ति हुई होगी कि वह अपनी प्रियतमा के प्रति किए गए अपने प्रण को पूर्ण कर सका। उसको गौरव का अनुभव हो रहा होगा कि उसकी प्रियतमा की क़ब्र—अपनी जीवन-संगिनी की यादगार—ऐसी बनी कि उसका सानी शायद ही मिले। किन्तु उस जीवित मुमताज़ के स्थान पर, अपनी जीवन-संगिनी की हड्डियों पर यह क़ब्र—वह क़ब्र कैसी ही सुन्दर क्यों न हो—पाकर शाहजहाँ के हृदय में दहकती हुई चिर वियोग की अग्नि क्या शान्ति हुई होगी ? क्या श्वेत सर्द पत्थर का वह सुन्दर अनुपम मक़बरा मुमताज़ की मृत्यु के कारण हुई कमी को पूर्ण कर सकता था ? मक़बरे को देख कर शाहजहाँ की आँखों के सम्मुख उसका सारा जीवन, जब मुमताज़ के साथ वह सुखपूर्वक रहता था, सिनेमा की फ़िल्म के समान दिखाई दिया होगा। प्रियतमा मुमताज़ की स्मृति पर पुनः आँसू ढलके होंगे, पुनः सुप्त स्मृतियाँ जग उठी होंगी और चोट खाए हुए उस हृदय के वे पुराने घाव फिर हरे हो गए होंगे।

पाठको ! जब आज भी कई एक दर्शक उस पवित्र समाधि

को देख कर दो आँसू बहाए बिना नहीं रह सकते, तब आप ही स्वयं विचार कर सकते हैं कि शाहजहाँ की क्या दशा हुई होगी। अपने जीवन में बहुत कुछ सुख प्राप्त हो चुका था, और रहे-सहे सुख की प्राप्ति होने को थी, उस सुखपूर्ण जीवन का मध्याह्न होने ही वाला था कि उस जीवन-सूर्य को ग्रहण लग गया, और वह ऐसा लगा कि वह जीवन-सूर्य अस्त होने तक ग्रसित ही रहा। ताजमहल उस ग्रसित सूर्य से निकली हुई अद्भुत सुन्दरतापूर्ण तेजोमयी रश्मियों का एक घनीभूत सुन्दर पुंज है, उस ग्रसित सूर्य की एक अनोखी स्मृति है।

× × ×

शताब्दियाँ बीत गईं। शाहजहाँ कई बार उस ताजमहल को देख कर रोया होगा। मरते समय भी उस सुम्मन बुर्ज़ में शैय्या पर पड़ा वह ताजमहल को देख रहा था। और आज भी न जाने कितने मनुष्य उस अद्वितीय समाधि के उद्यान में बैठे घंटों उसे निहारा करते हैं, और प्रेमपूर्ण जीवन के नष्ट होने की स्मृति पर, अचिरस्थायी मानव जीवन की उस करुण कथा पर रोते हैं। न जाने कितने यात्री दूर दूर देशों से बड़े भयंकर समुद्र पार कर उस समाधि को देखने के लिए खिंचे चले आते हैं। कितनी उमंगों से वे आते हैं, परंतु उसासें भरते हुए ही वे वहाँ से लौटते हैं। कितने हर्ष और उल्लास के साथ वे आते हैं, किन्तु दो बूँद आँसू बहा कर और हृदय पर दुःख का भार लिये ही वे वहाँ से निकलते हैं। प्रकृति भी प्रति वर्ष चार मास तक इस अद्वितीय प्रेम के भंग होने की करुण स्मृति पर रोती है।

मनुष्य जीवन की, मनुष्य के दुःखपूर्ण जीवन की—जहाँ मनुष्य की कई वासनाएँ अतृप्त रह जाती हैं, जहाँ मनुष्य के प्रेम के बंधन बँधने भी नहीं पाते कि काल के कराल हाथों पड़ कर टूट जाते हैं,—मनुष्य के उस करुण जीवन की स्मृति—उसकी अतृप्त वासनाओं, अपूर्ण आकांक्षाओं तथा खिलते हुए प्रेम-पुष्प की वह समाधि—आज

भी यमुना के तीर पर खड़ी है। शाहजहाँ का वह विस्तृत साम्राज्य, उसका वह अमूल्य तख़्तताऊस, उसका वह अतीव महान् घराना, शाही ज़माने का चकाचौंध कर देने वाला वह वैभव, आज सब कुछ विलीन हो गया—समय के कठोर झोंकों में पड़कर वे सब आज विनष्ट हो चुके हैं। ताजमहल का भी वह वैभव, उसमें जड़े हुए वे बहुमूल्य रत्न भी न जाने कहाँ चले गए, किन्तु आज भी ताजमहल अपनी सुन्दरता से समय को लुभा कर उसे भुलावा दे रहा है, मनुष्य को क्षुब्ध कर उसे रुला रहा है, और यों मानव-जीवन की इस करुण कथा को चिरस्थायी बनाए हुए है। वैभव से विहीन ताज का यह विधुर स्वरूप उसे अधिक सोहता है।

आज भी उन सफ़ेद पत्थरों से आवाज़ आती है—"मैं भूला नहीं हूँ"। आज भी उन पत्थरों में न जाने किस मार्ग से होती हुई पानी की एक बूँद प्रति वर्ष उस सुन्दर सम्राज्ञी की क़ब्र पर टपक पड़ती है; वे कठोर निर्जीव पत्थर भी प्रति वर्ष उस सम्राज्ञी की मृत्यु को याद कर, मनुष्य की करुण कथा के इस दुःखान्त को देख कर, पिघल जाते हैं और उन पत्थरों में से अनजाने एक आँसू ढलक पड़ता है। आज भी यमुना नदी की धारा समाधि को चूमती हुई भग्न मानव-जीवन की वह करुण कथा अपने प्रेमी सागर को सुनाने के लिए दौड़ पड़ती है। आज भी उस भग्न-हृदय की व्यथा को याद कर कभी कभी यमुना नदी का हृदय-प्रदेश उमड़ पड़ता है और उसके वक्षःस्थल पर भी आँसुओं की बाढ़ आती है।

उन श्वेत पत्थरों में से आवाज़ आती है—"आज भी मुझे उसकी स्मृति है"। आज भी उस खिलते हुए प्रेम-पुष्प का सौरभ—उस प्रेम-पुष्प का, जो अकाल में ही डंठल से टूट पड़ा—उन पत्थरों में रम रहा है। वह स्खलित पुष्प सूख गया, उसका भौतिक स्वरूप इस लोक में रह गया, परन्तु उस सुन्दर पुष्प की आत्मा विलीन हो गई, अनन्त में अन्तर्हित हो गई। अपने अनन्त के पथ पर अग्रसर

होती हुई वह आत्मा उस स्खलित पुष्प को छोड़ कर चली गई; पत्थर की उस सुन्दर किन्तु त्यक्त समाधि में केवल उसकी स्मृति विद्यमान है। यों शाहजहाँ ने निराकार मृत्यु को अक्षय सौन्दर्यपूर्ण स्वरूप प्रदान किया। मनुष्य के अचिरस्थायी प्रेम को, प्रेमाग्नि की धधकती हुई ज्वाला को, स्नेह दीपक की झिलमिलाती हुई उस उज्ज्वल लौ को, चिरस्थायी बनाया।

एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ

एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ

नव यौवन उमड़ रहा था। बाल्यकाल के उन विपत्तिपूर्ण दिनों को पार कर उन्होंने यौवन की देहली पर पदार्पण किया। दोनों का ही यौवन काल आने लगा। यौवन ने अकबर के उस सुन्दर गोरे गोरे चेहरे पर काली काली रेखाएँ अंकित कर अपने आगम की सूचना दी। बरसों की अशान्ति के बाद पुनः शान्ति छा रही थी। शान्तिपूर्ण वातावरण को पाकर भारत में नव-जीवन का संचार हुआ। शान्ति-सुधा की घूँट लेकर बूढ़े भारत ने भी अपना चोला बदला। उसने जीर्ण वृद्ध गलित काय को त्याग कर नवीन स्वरूप धारण किया। मुग़ल साम्राज्य भी यौवन को पाकर इठलाने लगा।

अकबर का यौवन उभर रहा था। बाल्यकाल से ही उसने राज्यश्री की उपासना आरम्भ की थी। बरसों की कठोर तपस्या तथा घोर तप के अनन्तर वह अपनी प्रेमिका के चरणों में अर्पण करने के लिए कुछ सामग्री एकत्रित कर चुका था; अनेकों भीषण संग्राम, हज़ारों पुरुषों का बलिदान करने के बाद ही वह कुछ साम्राज्य निर्माण कर पाया था। किन्तु तपस्या निष्फल न गई। जिस राज्य-श्री को प्राप्त करने में वृद्ध अनुभवी हुमायूँ विफल हुआ था, वही राज्यश्री अनुभवहीन नवयुवा अकबर के पैरों में लोटने लगी।

अनन्तयौवना राज्यश्री अपने नये प्रेमी अकबर पर प्रसन्न हुई। अपने उपयुक्त प्रेमी को पाकर उसके हृदय में नई नई उमंगें उठने लगीं। उसके चिरयुवा हृदय में पुनः जागृति हुई। नई भावनाओं का उसके हृदय-रंगमंच पर नृत्य होने लगा। अपने पुराने प्रेमियों के दिए हुए आभूषण-शृंगारों से उसने मुँह फेर लिया। उसे नया शृंगार

करने की सूझी, नवीन रत्नों के लिए उसने नए प्रेमी की ओर आग्रह-पूर्ण दृष्टि डाली; और अकबर . . . वह तो अपनी प्रेयसी की आँखों के इशारे पर नाच रहा था।

× × ×

यौवन-मदिरा को पीकर उन्मत्त अकबर राज्यश्री को पाकर अब अधिक मस्त हो गया। आँखों में इस दुहरी मस्ती की लाली छा गई। इतने दिनों के घोर परिश्रम तथा कठिन आपत्पूर्ण जीवन के बाद अपनी प्रेमिका राज्यश्री को पाकर अकवर ऐश्वर्य-विलास के लिए लालायित हो उठा था। वह ढूँढ़ने लगा एक ऐसे अज्ञात निर्जन स्थान को जहाँ वह अपनी उठती हुई उमंगों और वढ़ती हुई कामनाओं को स्वच्छन्द कर सके।

अकबर का हृदय एक मानव युवा का हृदय था। प्रारम्भिक दिनों की तपस्या उसकी उमड़ती हुई उमंगों को नहीं दवा सकी थी, उन्हें शान्त नहीं कर सकी; विलास-वासना की ज्वाला अब भी अकवर के दिल में जल रही थी, केवल उसकी ऊपरी सतह पर संयम की राख चढ़ गई थी। परन्तु राज्यश्री की प्रेम-मदिरा ने, उसकी तिरछी नज़र की इस चोट ने उस अग्नि को पूर्ण प्रज्वलित कर दिया। धू-धू करके वह धधक उठी। अकबर का रहा-सहा संयम भी इस भीषण ज्वाला की लपटों में पड़ कर भस्म हो गया। पतंगे की नाईं अब अकवर भी विलास की दीप-शिखा के आसपास मँडराने लगा।

महान् साम्राज्यकी सत्ता तथा सफलता के उस अनुकूल वातावरण में अकवर पर खूब गहरा नशा चढ़ा। उसी नशे में चूर राज्यश्री का प्यारा अकवर इस भौतिक संसार को छोड़ कर अब स्वप्न-संसार में विचरने लगा। राज्यश्री के हाथों युवा अकवर ने ख़ूब छक कर पी थी वह मादक मदिरा। अब उसी की गोद में वेहोश पड़ा पड़ा एक स्वप्न देखने लगा। वह स्वप्न क्या था, भारतीय स्थापत्य-कला के इतिहास की एक महान् घटना थी, मध्यकालीन

भारतीय-गगन का एक देदीप्यमान धूमकेतु था। धूमकेतु की नाईं अनजाने ही यह स्वप्न आया और उसी की तरह यह भी एकाएक ही अदृष्ट हो गया। एकाएक विलीन हो गया, किन्तु फिर भी संसार में अपनी अमिट स्मृति छोड़ गया। जगत के भूतल पर आज भी उस स्वप्न की कुछ स्मृतियाँ यत्र-तत्र अंकित हैं। ये स्मृतियाँ इतनी सुन्दर हैं, उनका रहा-सहा, छिन्न-भिन्न, जर्जरित स्वरूप भी इतना हृदयग्राही है कि उनको देख कर ही मनुष्य का हृदय द्रवीभूत हो जाता है और कल्पना-शक्ति के सहारे उन परित्यक्त खण्डहरों के पुरातन प्राचीन वैभवपूर्ण दिनों की याद कर उनके उस स्मृति-संसार की सैर करने को दौड़ पड़ता है। जब इन भग्न अवशेषों का, इन परित्यक्त ठुकराई हुई स्मृतियों का स्वरूप भी इतना आकर्षक है तो वह स्वप्न कितना मनोरंजक, सुन्दर तथा उन्मादक रहा होगा, —इसका पता लगाना मानवीय कल्पना के लिए भी एक असम्भव अनहोनी बात है। एक अन्तर्हित स्वप्न की मूक दर्शिका, उस अद्भुत नाटक का वह अनोखा रंगमंच, उस परित्यक्ता नगरी से अधिक सुन्दर तथा अधिक शोचनीय वस्तु भारत में ढूंढ़े नहीं मिलेगी।

उस सुखद स्वप्न का वर्णन करना, उसको चित्रित करना एक कठिन समस्या है। उस स्वप्न की स्मृतियाँ इतनी थोड़ी हैं, उन दिनों की याद दिलाने वाली सामग्री का इतना अभाव है कि रही-सही सामग्री पर समस्त स्वप्न का वह अद्भुत विशाल भवन निर्माण करना असम्भव हो जाता है। आधुनिक लेखक तो क्या, उस स्वप्न के दर्शक भी, उसका पूरा-पूरा जीता-जागता वृतान्त नहीं लिख सके। जिस किसी ने स्वयं यह स्वप्न देखा था, उसे ऐश्वर्य और विलास के उस उन्मादक दृश्य ने उन्मत्त कर दिया; वह आश्चर्य-चकित हो विस्फारित नेत्रों से देखता ही रहा, एकटक ताकता रहा। और जब नशा उतरा, कुछ होश हुआ, तब नशे की खुमारी के कारण लेखक की लेखनी में वह

चंचलता, मादकता तथा स्फूर्ति न रही, जिनके विना उस वर्णन में कोई भी आकर्षण या जीवन नहीं रहता है ।

× × ×

स्वप्न था । मादकता की लहर थी । जोरों से नशा चढ़ रहा था । ऐश्वर्य-विलास के भयंकर उन्मत्त प्रवाह में अकवर वहा जा रहा था । अकवर एकवारगी स्वप्न-संसार में विचरण करने लगा । राज्यश्री की गोद में पड़ा था; उसे किस वात की कमी प्रतीत होती ? फिर भी एक बात बहुत अखरती थी; अपनी गोद सूनी देख कर उसे दुःख अवश्य होता था । अपने अनेकानेक प्यारे-प्यारे सुकोमल वच्चों को निर्दयी कठोर मृत्यु द्वारा छीने जाते देख कर उसका हृदय विकल हो उठता था । क्रूर काल तथा अदृश्य नियति से चिढ़ कर वह अपना सिर पीट लेता था; अपनी विवशता पर उसे क्रोध आता था, और वही क्रोध पानी वनकर आँखों की राह टपक पड़ता था ।

तालाव लहलहा रहा था, उसके पूर्वी किनारे पहाड़ी पर एक सन्त संसार से विरक्त वैठे ईश्वर-भक्ति में लीन अपने दिन विता रहे थे । अकवर ने सोचा कि कुछ पुण्य इकट्ठा कर ले; ईश्वर की ही दो विरोधिनी शक्तियों को आपस में लड़ा कर कुछ लाभ उठावे । दुर्भाग्य एवं क्रूर काल का सामना करने के लिए उसने स्वर्गीय पुण्य को अपनी ओर मिलाने की सोची । अपने विगत जीवन में एकत्रित पुण्य पर भरोसा न कर वह दूसरों द्वारा संचित पुण्य की भी भीख माँगने के लिए हाथ फैलाए निकाला ।

एक अद्भुत दृश्य था । जो अकवर सहस्त्रों साधु-भिखमंगों को राजा वना सकता था, वही आज एक अर्धनग्न तपस्वी के पास भीख माँगने आया । राज्यश्री के लाड़ले अकवर ने तप के सम्मुख सिर झुकाया, तपस्या के चरणों में राज्यश्री ने साष्टांग प्रणाम किया । जिस तपस्या ने सांसारिक जीवन छुड़वाया, भौतिक

सुखों, मानवीय कामनाओं तथा ऐश्वर्य-विलास की बलि दिलवाई, उसी तपस्या ने अपना संचित पुण्य भी लुटा दिया। जब राज्यश्री अंचल फैलाए भीख माँगने आई तब तो तपस्वी ने उसकी झोली भर दी। अकबर को मुँह-माँगा वरदान मिला। मनोनुकूल भिक्षा पाकर अकबर लौट गया; शीघ्र ही सलीम का जन्म हुआ; काल की एक न चली, अदृष्ट के अभेद्य कवच को पुण्य के पैने शरों ने छिन्न-भिन्न कर दिया।

× × ×

अकबर ने पुण्य तथा तपस्या की शक्ति देखी, किन्तु उनकी महत्ता का अनुभव नहीं कर सका। राज्यश्री की गोद में सुख की नींद सोते हुए अकबर को तप अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। उन्मत्त अकबर की लाल लाल आँखें शुद्ध श्वेत तप से निकलती हुई आभा को नहीं देख पाईं। साधु के संचित पुण्य को पाकर अकबर का मनोरथ सिद्ध हो गया, परन्तु वह इस बात को नहीं समझ पाया कि यह पुण्य साधु की कठोर तपस्या का फल था; उसने उस स्थान को ही पवित्र समझा। अकबर ने सोचा कि "क्यों न मैं इस पवित्र स्थान पर उस पुण्य भूमि में निवास कर, पुण्य तथा राज्यश्री, दोनों की पूर्ण सहायता प्राप्त करूँ जिससे अपनी समस्त वाञ्छाएँ पूर्ण हो सकें"। जहाँ एक बीहड़ वन था, वहीं अकबर ने एक सुन्दर नगरी निर्माण करने की सोची।

निराशा के घोर अंधकार में एकाएक बिजली कौंधी और उतनी ही शीघ्रता के साथ विलीन हो गई। अकबर ने तप और संयम की अद्वितीय चमक देखी, किन्तु अनुकूल वातावरण न पाकर वह ज्योति अन्तर्हित हो गई। पुनः सर्वत्र भौतिकता का अन्धकार छा गया, किन्तु इस बार उसमें आशा की चाँदनी फैली। अकबर चपला की उस चमक को देख कर चौंका था, उस आभा की ओर आकृष्ट होकर उस ओर लपका, परन्तु कुछ ही आगे बढ़ कर लड़खड़ाने लगा,

पुनः मूर्छित हो गया। गिरते हुए अकबर को राज्यश्री ने सम्हाला। यौवन, धन और राजमद से उन्मत्त अकबर आशा की उस चाँदनी को पाकर ही सन्तुष्ट हो गया; एक बार आँख खोल कर उसे निहारा और राज्यश्री की ही गोद में आँखें बन्द कर पड़ा रहा। तप और संयम की वह चमक अकबर का नशा नहीं उतार सकी, उसकी ओर लपक कर अकबर अब अँधियारे में न रह कर आशा की छिटकी हुई चाँदनी के उस समुज्ज्वल वातावरण में जा पहुँचा था।

× × ×

अब अकबर पर एक नई धुन सवार हुई। वह सोचने लगा कि उस पवित्र स्थान में एक नया शहर बसावे, एक ऐसी सुन्दर नगरी का निर्माण करे जहाँ ऐश्वर्य और विलास की समग्र सामग्री एकत्रित हो, जो नगरी सौन्दर्य और वैभव में भी अद्वितीय हो। मादकता की एक लहर उठ रही थी; स्वप्न-संसार में विचरते हुए अकबर के मस्तिष्क की एक सनक थी। राज्यश्री के अनन्य प्रेमी अकबर ने अपनी इच्छा पूर्ति के लिए अपनी प्रेयसी का आह्वान किया। अलाउद्दीन के अद्भुत दीपक के भूत की तरह राज्यश्री ने भी अकबर की इच्छा को शीघ्रातिशीघ्र पलक मारते ही पूर्ण करने का प्रण किया।

संसार की उस अनोखी जादूगरनी ने अपनी जादू भरी लकड़ी घुमाई, और अल्प काल में ही आश्चर्यजनक तेज़ी से बढ़ने वाले उस आम के पौधे की नाईं उस बीहड़ वन के स्थान पर एक नगरी उठने लगी। उन्मत्त अकबर की मस्ती ने, उसकी आँखों की लाली ने, उस नगरी को लाली प्रदान की। मस्ताने अकबर के हाथों में यौवन-मदिरा का प्याला छलक पड़ा, कुछ मदिरा ढलक गई और उन्हीं कुछ छलकी हुई बूंदों ने सारी नगरी को अपने रंग में रँग दिया। जहाँ दुर्गम पहाड़ियाँ थीं वहीं लाल भवनों की सुन्दर कतारें देख पड़ने लगीं; उन पहाड़ियों की मस्ती फूट पड़ी, उनके भी उन ऊबड़-खाबड़ कठोर शुष्क कपोलों पर यौवन की लाली झलकने लगी।

सारी नगरी लाल है। मुग़ल साम्राज्य के यौवन की लाली, अकबर के मस्ताने दिनों की वह अनोखी मादकता, आज भी इन छिन्न-भिन्न खँडहरों में दिखाई देती है। अनन्तयौवना राज्यश्री ने इस नगरी का अभिषेक किया था, यही कारण है कि आज भी यौवन की लाली ने, स्वप्न की उस मादकता ने इन पत्थरों का साथ नहीं छोड़ा। मुग़ल साम्राज्य के प्रारम्भिक दिनों का वह मदमाता यौवन समय के साथ ही नष्ट हो गया, तथापि आज भी इन रक्तवर्ण महलों को देख कर उन यौवनपूर्ण दिनों की सुध आ जाती है। ज्यों ज्यों मुग़ल साम्राज्य का यौवन मद उतरता गया त्यों त्यों लाली के स्थान पर प्रौढ़ता की उज्ज्वल आभा रूपी श्वेतता का दौर दौरा बढ़ता गया। मुग़ल साम्राज्य की प्रौढ़ता के, उसके आते हुए वृद्धापकाल के द्योतक वे श्वेत केश प्रथम बार शाहजहाँ के शासनकाल में दिखाई दिए। दिल्ली के क़िले के वे श्वेत महल, आगरा का वह प्रसिद्ध उज्ज्वल मोती, और उसी का वह अनोखा ताज, मुग़ल साम्राज्य के ढलकते हुए यौवन में निकले हुए ही कुछ श्वेत केश हैं।

पानी की तरह धन बहा। श्री से सींचे जाने पर कठोर नीरस ऊसर भूमि में भी अंकुर फूटा। वे वीरान परित्यक्ता पहाड़ियाँ भी अब सरस हुईं, उनका पाषाण हृदय भी पिघल गया। राज्यश्री की जादू भरी लकड़ी घूमी और उन उजाड़ पहाड़ियों में धीरे धीरे सुन्दर लाल लाल महलों का एक उद्यान दिखाई देने लगा, और उस उद्यान में खिला एक सुन्दर सुगठित श्वेत पुष्प।

यों उस स्वच्छन्द युवा सम्राट् ने उन्मत्त होकर अपनी कामनाओं तथा आकांक्षाओं को उद्दाम कर दिया। उसकी विलास-वासना उलंग लास्य-लीला करने लगी। अपने सुख-स्वप्न को सच्चा कर दिखाने के लिए सम्राट् ने कुछ भी उठा नहीं रक्खा; और इस तरह संसार को, और विशेषतया भारत को कला का एक ऐसा अद्वि-

तीय दृश्य दिखाया, जिसकी भग्नावशेष स्मृतियों को देख कर आज भी संसार अघाता नहीं है।

× × ×

वह स्वप्न था, और उसी स्वप्न में उस स्वप्नलोक की रचना हुई थी। स्वप्न के अन्त के साथ ही उस लोक का भी पतन हुआ। परन्तु आज भी स्वप्न की, उस स्वप्नलोक की, कुछ स्मृतियाँ विद्यमान हैं। आओ! वर्त्तमान को सामने से हटाने वाली विस्मृति-मदिरा का प्याला ढालें, ओर उसे पीकर कुछ काल के लिए इन भग्नावशेषों में घूम घूम कर उस स्वप्नलोक में विचरें। तब कल्पना के उन सुनहले पंखों पर बैठे उड़ चलेंगे उस लोक में ज़हाँ स्वयं अकबर विचरता था।

चलो! सैर कर आवें उस लोक की जहाँ राजमद की कुछ ढलकी हुई बूँदों ने सुन्दर स्वरूप ग्रहण किया; जहाँ प्रथम बार मुग़ल साम्राज्य का यौवन फूटा, और जहाँ मुग़ल साम्राज्य तथा मुस्लिम सभ्यता ने भारतीय सभ्यता पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया। यहीं वह लोक है जहाँ एक वढ़ते हुए साम्राज्य तथा नवयुवा सम्राट् की कामनाओं को तृप्त करने के लिए राज्यश्री इठलाती थी। यहीं अकबर के हृदय की विशालता पर मुग्ध होकर समस्त भारत ने एक बार उसके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पण की तथा उसे अकबर ने सप्रेम विनीत भाव से ग्रहण किया और भारतीय सभ्यता के सूचक उन आभूषणों से नवजात नगरी का शृंगार किया।

दिल पर पत्थर रख कर, उसकी वर्त्तमान दशा को भूल कर, चलो उस लोक में, उस काल में, जब उस नगरी को सजाने में, उसको सुशोभित करने में ही भारत-सम्राट् रत रहता था; जिसका शृंगार करने में ही अपनी सारी योग्यता, अपना समस्त धन एवं सारा कला-कौशल उसने व्यय कर दिया। जन्मकाल से ही सारा संसार उस नगरी पर मुग्ध हो गया, और उस सुन्दर नगरी की भेंट करने के लिए

अपनी उत्तमोत्तम वस्तुएँ लेकर सब कोई दौड़ पड़े। और उस नगरी में घूम कर उन १५ वर्षों के बहुत कुछ इतिहास का, उस युग के महान् महान् व्यक्तियों का थोड़ा बहुत पता लग जाता है। अकबर पर राजमद चढ़ा हुआ था, वह स्वप्नलोक में विचरता था, किन्तु फिर भी वह अपने साथियों को नहीं भूला। वह ऐश्वर्य और विलास के सागर में गोते लगाने को कूद पड़ा और साथ ही अपने मित्रों को भी खींच ले गया। सीकरी अकबर की ही नहीं, किन्तु तत्कालीन भारत की एक स्मृति है।

× × ×

संसार का सबसे बड़ा विजय-तोरण, वह बुलन्द दरवाज़ा, छाती निकाले दक्षिण की ओर देख रहा है। इसने उन मुग़ल योद्धाओं को देखा होगा जो सर्वप्रथम मुग़ल साम्राज्य के विस्तार के लिए दक्षिण की ओर बढ़े थे। उसने विद्रोही औरंगज़ेब की उमड़ती हुई सेना को घूरा होगा, और पास ही पराजित दारा के स्वरूप में अकबर के आदर्शों का पतन भी उसे देख पड़ा होगा। अन्तिम मुग़लों की सेनाएँ भी इसी के सामने होकर निकली होंगी—वे सेनाएँ जिनमें वेश्याएँ, नर्तिकाएँ और स्त्रियाँ भी रणक्षेत्र पर जाती थीं और रणक्षेत्र को भी विलास-भूमि में परिणत कर देती थीं। यदि आज यह दरवाज़ा अपने संस्मरण कहने लगे, पत्थरों का यह ढेर बोल उठे, तो भारत के न जाने कितने अज्ञात इतिहास का पता लग जावे और न जाने कितनी ऐतिहासिक त्रुटियाँ ठीक की जा सकें।

यह एक विजय-तोरण है; खानदेश की विजय का एक स्मारक है। किन्तु यदि देखा जाय तो यह दरवाज़ा अकबर द्वारा भारतीय सभ्यता पर प्राप्त की गई विजय का ही एक महान् स्मारक है। अकबर ने अपने हृदय की विशालता को इस दरवाज़े की विशालता में व्यक्त किया है।

"यह संसार एक पुलिया है, इसके ऊपर से निकल जा, किन्तु

इस पर घर बनाने का विचार मन में न ला । जो यहाँ एक घंटा भर भी ठहरने का इरादा करेगा वह चिरकाल तक यहाँ ही ठहरने को उत्सुक हो जावेगा । सांसारिक जीवन तो एक घड़ी भर का ही है; उसे ईश्वर-स्मरण तथा भगवद्‌भक्ति में बिता; ईश्वरोपासना के अतिरिक्त सब कुछ व्यर्थ है, सब कुछ असार है ।"

सांसारिक जीवन की असारता सम्बन्धी इन पंक्तियों को एक विजय-तोरण पर देख कर कुतूहल होता है । अकबर मानव जीवन के रहस्य को ढूँढ़ निकालने तथा दो पूर्णतया विभिन्न सभ्यताओं का मिश्रण करने निकला था, किन्तु वह वास्तविक वस्तु तक नहीं पहुँच पाया, मृगतृष्णा के जल की नाईं उन्हें ढूँढ़ता ही रहा और उसे अन्त तक उनका पता न मिला । भोले भाले बालक की तरह उसने हाथ फैलाकर अनजाने ही कुछ उठा लिया; वह सोचता था कि उसे उस रहस्य का पता लग गया, वह इष्ट वस्तु को पा गया; किन्तु जिसे वह रत्न समझे बैठा था वह था काँच का टुकड़ा । सारे जीवन भर अकबर यही सोचता रहा कि उसे इच्छित रत्न प्राप्त हो गया और उसी खयाल से वह आनन्दित होता था ।

जीवन भर अकबर भारतीय तथा मुस्लिम सभ्यताओं के सम्मिश्रण का स्वप्न देखता रहा । यह एक सुखद स्वप्न था । अतः जब अकबर के उस मानव-जीवन-स्वप्न का अन्त हुआ तब सभ्यता की यह स्वप्निल विजय भी नष्ट हो गई और वह सम्मिश्रण केवल एक स्वप्न-वार्ता, नानी की एक कहानी मात्र बन गई । बुलन्द दरवाज़ा उसी सुखद स्वप्न की एक स्मृति है; एवं इसे विजय-तोरण न कह कर "स्वप्न-स्मारक" कहना अधिक उपयुक्त होगा ।

उस दरवाज़े में होकर, उस स्वप्न को याद करते हुए, हम एक आँगन में जा पहुँचते हैं; सामने ही दिखाई पड़ती है एक सुन्दर श्वेत क़ब्र । यह उस साधु की समाधि है जिसने अपने पुण्य को देकर

मुग़ल घराने को आरम्भ में ही निर्मूल होने से बचाया था। अपनी सुन्दरता के लिए, अपनी कला की दृष्टि से यह एक अनुपम अद्वितीय कृति है। समस्त उत्तरी भारत के भिन्न-भिन्न धर्मानुयायी हिन्दू-मुसलमान आदि प्रति वर्ष इस क़ब्र पर खिंचे चले आते हैं; वे सोचते हैं कि जिस व्यक्ति ने जीते जी अकबर को भिक्षा दी, क्या उसी व्यक्ति की आत्मा स्वर्ग में बैठी उनकी छोटी सी इच्छा भी पूर्ण न कर सकेगी ?

× × ×

और सामने ही है वह मसजिद, जो यद्यपि पूर्णतया मुस्लिम ढंग की है, और जो अपनी सुन्दरता के लिए भी बहुत प्रख्यात नहीं है, तथापि वह एक ऐसी विशेषता के लिए विख्यात है जो किसी दूसरे स्थान को प्राप्त नहीं हुई। इसी मसजिद ने एक भारतीय मुसलमान सम्राट् को उपदेशक के स्थान पर खड़ा होकर प्रार्थना करते देखा था। भारतीय मुस्लिम साम्राज्य के इतिहास में यह एक अनोखी अद्वितीय घटना थी, और वह घटना इसी मसजिद में घटी थी।

अकबर को सूझी थी कि इस्लाम धर्म की असहिष्णुता को मिटा दे, उसकी कठोरता को भारतीय सहिष्णुता की सहायता से कम कर दे। क्यों न वह भी प्रारम्भिक खलीफ़ाओं के समान स्वयं धर्माधिकारी के उच्चासन पर खड़ा होकर सच्चे मानव धर्म का प्रचार करे: उसके साथी अबुल फ़ज़ल और फ़ैज़ी ने उसके आदर्श को सराहा। और उस दिन जब पूरी पूरी तैयारियाँ हो गईं तब अकबर पूर्ण उत्साह के साथ उस उच्चासन पर चढ़ कर प्रार्थना करने लगा :—

"उस जगत्-पिता ने मुझे साम्राज्य दिया। उसने मुझे बुद्धिमान्, वीर और शक्तिशाली बनाया। उसने मुझे दया और धर्म का मार्ग सुझाया, और उसी की कृपा से मेरे हृदय में सत्य के प्रति प्रेम का सागर हिलोरें मारने लगा। कोई भी मानवीय जिह्वा उस परमपिता

के स्वरूप, गुणों आदि का पूरा पूरा वर्णन नहीं कर सकती। अल्लाहो अकबर ! ईश्वर महान् है।"

परन्तु......आह ! अपने सम्मुख, अपने चरणों में, हज़ारों पुरुषों को एक साथ ही उस परमपिता की उपासना में रत, नतमस्तक होते देख कर अकबर स्तब्ध हो गया। अपने उस नए पद की महत्ता का अनुभव कर अकबर अवाक् रह गया, उसका गला भर आया, आँखें डबडबा गईं। आवेश के मारे कपड़े में अपना मुंह छिपा कर वह उस उच्चासन से उतर पड़ा। अकबर के अधूरे संदेश को काज़ी ने पूरा किया। अकबर ने स्वप्न देखा था, जिसमें वह एक महात्मा तथा नवीन धर्मप्रचारक की तरह खड़ा उपदेश दे रहा था और उसकी समस्त प्रजा स्तब्ध खड़ी उसके संदेश को एकाग्रचित्त से सुन रही थी। किन्तु जीवन की वास्तविकता की टक्कर खाकर उसका वह स्वप्न भंग हो गया; उसे प्रथम वार ज्ञात हुआ कि स्वप्नलोक भौतिक संसार से दूर एक ऐसा स्थान है, जहाँ मनुष्य अपनी इच्छाओं तथा आकांक्षाओं के साथ स्वच्छन्दतापूर्वक खेल सकता है, किन्तु उन इच्छाओं का भौतिक जगत में कुछ भी स्थान नहीं है।

भौतिक संसार को स्वप्नसंसार में परिणत करना मृगमरीचिका से पानी पीने की दुराशा करने के समान है। जो इसे साधने का प्रयत्न करता है वह इस संसार में उन्मत्त या विगड़े दिमाग़वाला पागल कहलाता है। इस भौतिक संसार में आकर वह स्वप्नलोक सांसारिक जीवन की भीषण चोटें न सहकर चूर चूर हो जाता है, और मनुष्य का वह छोटा सा हृदय उन भग्नावशेषों पर रोता है और उसी दुःख से विदीर्ण होकर टूक टूक हो जाता है। सम्भव है मनुष्य अपने लिए एक नया स्वप्नलोक निर्माण कर सके, किन्तु उसे नया हृदय कहाँ मिलेगा, जिसको प्राप्त कर वह अपने टूटे हुए हृदय को भूल सके, अपने पुराने घावों को भर दे और उसके वाद उस नये

स्वप्नलोक में सुखपूर्वक विचर सके। टूटे हुए हृदय को समेटे अपने भग्न स्वप्नसंसार की स्मृति का भार उठाए नवीन स्वप्नलोक में विचरना एक असम्भव बात है।

× × ×

और यही है उस अकबर का दीवान खास। बाहर से तो एक साधारण दुमंजिला मकान देख पड़ता है, किन्तु सचमुच में यह भारतीय कला का एक अद्भुत नमूना है। एक ही स्तंभ पर सारी ऊपरी मंजिल खड़ी है। उसे निर्माण करने में भारतीय कारीगरों ने बहुत कुछ बुद्धि व्यय की होगी। अकबर के समय इस मकान में क्या होता था? इस विषय पर इतिहासकारों में मतभेद है कि यहीं धार्मिक वाद-विवाद होते थे या नहीं। कुछ का कथन है कि इसी महान् स्तंभ पर बैठ कर अकबर विभिन्न धर्मानुयायियों के कथन सुना करता था, और वे धर्मानुयायी नीचे चारों ओर बैठे क्रम से अपने अपने धर्म की व्याख्या करते थे।

अकबर का मस्तिष्क विश्व-बंधुत्व तथा मानव-भ्रातृत्व के विचारों का पूर्ण आगार था। भिन्न-भिन्न धर्मों का भीषण संघर्ष देख कर उसके इन विचारों को भयंकर ठेस लगती थी, कठोर आघात पहुँचता था। कुछ ऐसे मूल तत्त्वों का संग्रह कर वह एक ऐसे मत को प्रारम्भ करना चाहता था, जहाँ किसी भी प्रकार का वैषम्य न हो, जिसमें कोई धार्मिक संकीर्णता न पाई जावे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह भिन्न धर्मानुयायियों के कथन सुना करता था। उस महान् स्तम्भ पर स्थित अकबर अन्त में एक पूर्ण सत्य को पा गया। उस महान् स्तम्भ की ही तरह "ईश्वर एक है" इस एक सत्य पर ही अकबर ने दीन-ए-इलाही का महान् भवन निर्माण किया। ज्यों ज्यों यह स्तम्भ ऊपर चढ़ता जाता है, त्यों त्यों उसका आकार बढ़ता जाता है, और अन्त में ऊपर पहुँच कर एक ऐसा स्थान आता है, जहाँ पर सब धर्मानुयायी समान अवस्था में भाई-भाई की तरह

मिल सकें। उस महान् धर्म दीन-ए-इलाही में जा पहुँचने के लिए अकबर ने चार राहें बनाईं जो हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध और ईसाइयों को सीधा विश्व-बन्धुत्व की उस विशद परिधि में ले जा सकें।

यह दीवान ख़ास एक तरह से अकबर के दीन-ए-इलाही का मूर्त्तिमान् स्वरूप है। बाह्य दृष्टि से यह एक साधारण वस्तु देख पड़ती है; किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह अपने ढंग का निराला ही है। इसी भवन में दीन-ए-इलाही का प्रारम्भ हुआ था; और इसी भवन के समान यद्यपि संसार विश्व-बन्धुत्व की महान् भावना को आश्चर्य-चकित होकर देखता है, तथापि एक अव्यवहारिक आदर्श मान कर उसे प्राप्त करने का वह प्रयत्न नहीं करता। दीन-ए-इलाही के समान ही यह भवन एक परित्यक्त उपेक्षित तथापि एक संपूर्ण आदर्श है।

सीकरी के खण्डहर विश्व-बन्धुत्व तथा मानव-भ्रातृत्व के उस नवजात आदर्श शिशु की श्मशान-भूमि हैं। मध्यकालीन भारत ने उसे गला घोंट कर मार डाला और वहीं दफ़ना दिया। अपने प्यारे बच्चे की मृत्यु पर उसकी माता, जगत-शान्ति, हाहाकार करती है, और रात्रि के समय जब समस्त संसार शान्त सो जाता है, और सुदूर आकाश से जब तारागण इस दुःखी लोक को ताकते हैं तथा इसकी दशा पर मूक रुदन करते हैं, तब आज भी उन खण्डहरों में उस दुखिया माता का सिसकना सुनाई देता है। बेचारी जगत-शान्ति उसासें भर कर रह जाती है, अपने प्यारे बच्चे की क़ब्र पर दो आँसू बहा देती है। परन्तु......संसार तो अपने हाल में ही मस्त चलता जाता है। कौन सहानुभूति करता है उस दुखिया माता के साथ ? कौन उस निरीह बच्चे की अकाल मृत्यु पर शोक प्रकट करने का कष्ट उठाता है ? करुणा......करुणा, संसार ने तो उसे राज्यश्री की उन्मत्त लाली में, उसके लिए बलिदान किए गए पुरुषों के गरम गरम तपतपाते ख़ून में डुबो दिया।

× × ×

दीवान ख़ास के पास ही वह चौकोर चबूतरा है, जहाँ बादशाह अपनी सम्राज्ञियों तथा अपने प्रेमी मित्रों के साथ जीवित गोटों का चौसर खेला करते थे। प्रत्येक गोट के स्थान पर एक सुन्दर नवयुवा दासी खड़ी रहती थी। पूर्णिमा की रात को जब समस्त संसार पर शीतल चाँदनी छिटकी होगी, उस समय उस स्थान पर चौसर का वह खेल कितना मादक रहा होगा। राजमद की मस्ती पर मदिरा की मादकता, और उस पर यह दृश्य......ओह! कुछ ख़याल तक नहीं हो सकता उस खेल के आनन्द का तथा उस स्थान के उस मस्ताने वातावरण का। अकबर के मदमाते मस्तिष्क की यह एक अनोखी सूझ थी। जहाँ तक पढ़ा या सुना है, संसार के इतिहास में अकबर के अतिरिक्त किसी ने भी जीवित गोटों का ऐसा चौसर नहीं खेला।

यों तो प्रत्येक शासक अपनी प्रजा के जीवन, उसकी स्वतन्त्रता तथा उसके समस्त कार्यों के साथ खिलवाड़ किया करता है। एकाध शासक ही ऐसा होगा, जिसे यह मालूम हो कि उसकी आज्ञाओं का पालन करने में शासितों पर क्या क्या बीतती होगी। जिन शासकों ने कभी भी आज्ञापालन का अभ्यास नहीं किया, जिन्होंने अपने बाल्य-काल से ही मानव जीवन के साथ खिलवाड़ किया, उनके लिए मानव जीवन केवल आमोद-प्रमोद की वस्तु है। वे दूसरों के जीवन के साथ जी भर कर खेलते हैं, पर उन बेचारों को यह मालूम नहीं कि उनका खिलवाड़ शासितों के लिए कितना भयंकर होता है।

परन्तु अकबर का यह खिलवाड़ उतना ही अहिंसक था, जितनी कि स्वप्न की लड़ाई होती है। संसार के लिए तो वह एक स्वप्न ही था। कुछ ही वर्षों के लिए और तब भी इनी-गिनी बार ही संसार ने यह दृश्य देखा। वह खेल एक अतीत स्मृति हो गई। अकबर के स्वप्नलोक का एक अनोखा दृश्य था। स्वप्नलोक के रंगमंच पर होने वाले नाटकों की एक विशिष्ट वस्तु थी। अकबर की

रंगरेलियों के विस्तृत आयोजन की एक अद्वितीय मनोरंजक विशेषता थी।

× × ×

और इस स्वप्नलोक में एक स्थान वह भी है, जहाँ अकबर अपनी सारी श्रेष्ठता, अपने सारे सयानेपन को भूल कर कुछ समय के लिए आँखमिचौनी खेलने लगता था। अकबर के वक्षःस्थल में भी एक छोटा सा हृदय धुकधुकाता था। अपने महान् उच्चपद की महत्ता का भार निरन्तर वहन करते करते कई बार वह शैथिल्य का अनुभव करता था। आठों पहर सम्राट् रह कर, मानव जीवन से दूर गौरव और उच्च पद के ऊसर रेगिस्तान में पड़ा पड़ा अकबर तड़पता था, उसका हृदय उन कृत्रिम बन्धनों से जकड़ा हुआ फड़-फड़ाता था। इसी कारण जब उस छोटे हृदय में विद्रोहाग्नि धधक उठती थी, तब कुछ समय के लिए अपने पद की महत्ता तथा गौरव को एक ओर रख कर वह सम्राट् भी बालकों के उस सुखपूर्ण भोले भाले संसार में घुस पड़ता था, जहाँ मनुष्य मात्र, चाहे वह राजा हो या रंक, एक समान हैं और सब साथ ही खेलते हैं। बालकों के साथ खेल कर अकबर मानव जीवन के कठोर सत्यों के साथ आँखमिचौनी खेलता था। अकबर को स्वप्नलोक में भी खेल सूझा। यों बालकों के साथ उनके उस अनोखे लोक में विचर कर अकबर वह जीवन-रस पीता था, जिसके बिना साम्राज्य के उस गुरुतम भार से दब कर वह कभी का इस संसार से बिदा हो गया होता।

× × ×

स्वप्न संसार का वह स्वप्नागार—वह ख़्वाबगाह—एक अनोखा स्थान है। स्वप्नलोक में रहते हुए भी अकबर की स्वप्न देखने की लत नहीं छूटी। कल्पनालोक में विचरने तथा स्वप्न देखने की लत एक बार पड़ी हुई किसकी छूटी है? यह वह मदिरा है जिसका प्याला एक बार मुँह से लगने पर कभी भी अलग नहीं होता, कभी भी

खाली रहने नहीं पाता। स्वप्नलोक में पड़ा पड़ा अकबर वास्तविक जीवन का स्वप्न देखता था। इस लोक में मस्त पड़ा था, किन्तु वह सम्राट् था, वास्तविक संसार को किस प्रकार भुलाता? भौतिक संसार के इन कार्यों में उसे निरंतर लगे रहना पड़ता था। ऐश्वर्य और विलासिता के सागर में ग़र्क रहते हुए भी उसे एक विशाल साम्राज्य पर शासन करना पड़ता था। साम्राज्य पर शासन करना तथा विस्मृति-मदिरा पीकर ऐश्वर्य-सागर में गोते लगाना दो ध्रुवों की नाईं विभिन्न हैं। अतएव जब अकबर की इच्छा हुई कि वह प्रेम-महोदधि में गोता लगावे, कुछ काल के लिए विस्मृतिलोक में घूमे तब तो उसने सांसारिक बातों को, साम्राज्य-संचालन के कार्य को, एक स्वप्न समझा। स्वप्नलोक के स्वप्नागार में पड़ा अकबर साम्राज्य-संचालन का स्वप्न देखा करता था। राज्य-कार्य करते हुए भी सुख-भोग का मद न उतरने देने के लिए अकबर ने इस स्वप्नागार की सृष्टि की थी।

× × ×

सीकरी का सीकर सूख गया, उसके साथ ही मुस्लिम साम्राज्य का विशाल वृक्ष भी भीतर ही भीतर खोखला होने लगा। करोड़ों पीड़ितों के तपतपाए आँसुओं से सींचे जाकर उस विशाल वृक्ष की जड़ें मुर्दा होकर ढीली हो गई थीं, अतः जब अराजकता, विद्रोह तथा आक्रमण की भीषण आँधियाँ चलने लगीं, युद्ध की चमचमाती हुई चपला चमकी, पराजय रूपी वज्रपात होने लगे तब तो यह साम्राज्य-रूपी वृक्ष उखड़ कर गिर पड़ा, टुकड़े टुकड़े होकर बिखर गया, और उसके अवशेष, विलास और ऐश्वर्य का वह भव्य ईंधन, असहायों के निश्वासों तथा शहीदों की भीषण फुँकारों से जल कर भस्म हो गए। जहाँ एक सुन्दर वृक्ष खड़ा था, जो संसार में एक अनुपम वस्तु थी, वहाँ कुछ ही शताब्दियों में रह गए, गम्भीर गह्वर, उस वृक्ष के कुछ अधजले झुलसे हुए यत्र-तत्र बिखरे टुकड़े तथा उस विशाल वृक्ष

की वह मुट्ठी भर भस्म। सीकरी के खण्डहर उसी भस्म को रमाए खड़े हैं।

× × ×

सब कुछ सपना ही तो था..... देखते ही देखते विलीन हो गया। दो आँखों की यह सारी करामात थी। प्रथम तो एकाएक झोंका आया, अकबर मानो सोते से जग पड़ा, स्वप्नलोक को छोड़ कर भौतिक संसार में लौट आया। स्वप्न भंग हो गया और साथ ही स्वप्नलोक भी उजड़ गया,.....और तब रह गई उनकी एकमात्र शेष स्मृति। किन्तु दो आँखें—अकबर की ही आँखें—ऐसी थीं जिन्होंने यह सारा स्वप्न देखा था, जिनके सामने ही इस स्वप्न का सारा नाटक—कुछ काल के लिए ही क्यों न हो—एक सुन्दर मनोहारी नाटक खेला गया था,..... जिसमें अकबर स्वयं एक पात्र था, उस स्वप्नलोक के रंगमंच पर पूरी शान और अदा के साथ अपना पार्ट खेलता था। उन दो आँखों के फिरते ही, उनके बन्द होने के बाद उस स्वप्न की रही-सही स्मृतियाँ भी लुप्त हो गईं। जो एक समय सच्ची घटना थी, जो बाद में स्वप्न मात्र रह गया था, आज उसका कुछ भी शेष न रहा। अगर कुछ बाकी बचा है तो केवल वह सुनसान भग्न रंगमंच, जहाँ यह दिव्य स्वप्न आया था, जहाँ जीवन का यह अद्भुत रूपक खेला गया था, जहाँ कुछ काल के लिए समस्त संसार को भूल कर अकबर ऐश्वर्य-सागर में गोते लगाने के लिए कूद पड़ा था, जहाँ अकबर के मदमाते यौवन की अक्षय कामनाओं और उद्दीप्त वासनाओं ने नग्न नृत्य किया था, और जहाँ वह महान् भारतविजयी सम्राट्, अपनी महत्ता को भूल कर, अपने गौरव को ताक में रख कर एक साधारण मानव बन जाता था, रंगरेलियाँ करता था, बालक की तरह उछलता था, जीवन के साथ आँखमिचौनी खेलता था और अमरत्व के सपने देखता था। सीकरी ही वह स्थान है, जिसे देख कर मालूम होता है कि

मनुष्य कितना ही महान् और बड़ा क्यों न हो जावे, उसकी भी छाती में एक छोटा-सा कोमल भावुक हृदय धुकधुकाता है, उस दिल में भी अनेक बार वासनाओं तथा आकांक्षाओं के भीषण संग्राम होते हैं; ऐसे पुरुष को भी मानवी दुःख-दर्द, सांसारिक कामनाएँ तथा भौतिक वासनाएँ सताती हैं।

× × ×

स्वप्न ही तो था। बढ़ते हुए वैभव के साथ कमल की नाईं यह नगरी बढ़ी थी। किन्तु लुप्त हो गया उसका वह वैभव, अकबर लौट गया भूतों की ओर। परन्तु आज भी उन सूखे पंकजों के अवशेष कीचड़ में धँसे हुए वहीं पड़े हैं। पंकपूर्ण पृथ्वी का हृदय भी पंकजों के इस पतन को देख कर भग्न हो गया, आँसुओं का प्रवाह उमड़ पड़ा, परन्तु वे आँसू भी शीघ्र ही सूख गए; उस जीवनपूर्ण सर की सतह सूख कर खण्ड खण्ड हो गई है।

वैभव से विहीन सीकरी के वे सुन्दर आश्चर्यजनक खण्डहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव-लिप्सा को देख कर आज भी वीभत्स अट्टहास करते हैं। अपनी दशा को देख कर सुध आती है उन्हें उन करोड़ों मनुष्यों की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ, शासकों, धनिकों तथा विलासियों की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गई थीं। आज भी उन भव्य खण्डहरों में उन पीड़ितों का रुदन सुनाई देता है। अपने गौरवपूर्ण भूतकाल को याद कर वे निर्जीव पत्थर भी रो पड़ते हैं। अपने उस बाल-वैधव्य को स्मरण कर वह परित्यक्ता नगरी उसासें भरती है। विलास-वासना, अतृप्त कामना तथा राजमद के विष की बुझाई हुई ये उसासें इतनी विषैली हैं कि उनको सहन करना कठिन है। इन्हीं आहों की गरमी तथा विष से मुग़ल साम्राज्य भस्मीभूत हो गया। अपनी दुर्दशा पर ढलके हुए आँसुओं के उस तप्त प्रवाह में रहे-सहे भस्मावशेष भी बह गए।

× × ×

एक नज़र तो देख लो इस मृत शरीर को, अकबर के उस भग्न स्वप्न-संसार के उस सुनसान रंगमंच को, अकबर के स्वप्नलोक के उन टूटे फूटे अवशेषों को। अकबर के ऐश्वर्य-विलास के इस लोक को उजड़े शताब्दियाँ बीत गईं, किन्तु उसकी ऐश्वर्य-इच्छा, विलास-वासना, वैभव-लिप्सा एवं कामना-कुँज का वह मक़बरा आज भी खड़ा है। सीकरी के वे भव्य खण्डहर मानवीय इच्छाओं, मनुष्य की सुख-वासनाओं तथा गौरव की आकांक्षाओं की श्मशान भूमि हैं। मानवीय अतृप्त वासनाओं का वह करुण दृश्य देख कर आज वे पाषाण भी क्षुब्ध हो जाते हैं। अपने असमय पतन पर टूटे हुए दिलों की आहें आज भी उन भग्न प्रासादों से सन सन करती हुई निकलती हैं।

अकबर ने स्वप्नलोक निर्माण किया था, किन्तु भौतिक जीवन के कठोर थपेड़े खाकर वह भंग हो गया। अपनी कृति की दुर्दशा, तथा् अपनी आशाओं और कामनाओं को निष्ठुर संसार द्वारा कुचले जाते देख कर अकबर रो पड़ा। उसका सजीव कोमल हृदय फट कर टुकड़े टुकड़े हो गया। वे टुकड़े सारे भग्न स्वप्नलोक में बिखर गए, निर्जीव होकर पथरा गए। सीकरी के लाल लाल खण्डहर अकबर के उस विशाल हृदय के रक्त से सने हुए टुकड़े हैं। टुकड़े टुकड़े होकर अकबर का हृदय निर्जीव हो गया, निरन्तर संसार की मार खाकर वह भी पत्थर की तरह कठोर हो गया। जिस हृदय ने अपना यौवन देखा अपने वैभवपूर्ण दिन देखे, जो ऐश्वर्य में लोटता था, स्नेह-सागर में जो डुबकियाँ लगाता था, राज्यश्री की गोद में जिसने वर्षों विश्राम किया, मद से उन्मत्त जो बरसों स्वप्नसंसार के उस सुन्दर लोक में विचरा, वही भग्न, जीर्ण-शीर्ण, पथराया हुआ, शताब्दियों से खड़ा सर्दी, गर्मी, पानी और पत्थर की मार खाकर भी चुप है।

× × ×

शताब्दियाँ बीत गईं और आज भी सीकरी के वे सुन्दर रँगीले

खण्डहर खड़े हैं। उस नवजात शिशु नगरी ने केवल पन्द्रह वर्ष ही शृंगार किया, और फिर उसके प्रेमी ने उसे त्याग दिया; उसने उसे ऐसा भुला दिया कि कभी भूल से भी लौट कर मुँह नहीं दिखाया। ऐश्वर्य और विलास में जिसका जन्म हुआ था, अनन्तयौवना राज्यश्री ने जिसे पाला-पोसा था, एक मदमाते युवा सम्राट् ने जिसका शृंगार कराने में अपना सर्वस्व लुटा दिया था और जिसकी अनुपम सुन्दरता पर एक महान् साम्राज्य नाज़ करता था, उससे अपने प्रेमी द्वारा ऐसा तिरस्कार—घोर अपमान—नहीं सहा गया। अकबर के समय में ही उसने वैभव को त्याग कर विधवा वेश पहिन लिया था। बिछुए फेंक कर उसने बिछुआ हृदय से लगाया। और अकबर की मृत्यु होते ही तो सब कुछ लुट गया, हृदय विदीर्ण हो गया, शोक के मारे फट गया, अंग क्षत-विक्षत हो गए, आँखें पथरा गईं और आत्मा अनन्त में विलीन हो गई। भारत विजेता, मुग़ल साम्राज्य के निर्माता, महान् अकबर की प्यारी नगरी का वह निर्जीव शरीर शताब्दियों से पड़ा धूल-धूसरित हो रहा है!

× × ×

सर सर करती हुई हवा एक छोर से दूसरे छोर तक निकल जाती है और आज भी उस निर्जीव सुनसान नगरी में फुसफुसाहट की आवाज़ में डरता हुआ कोई पूछता है—"क्या अब भी मेरे पास आने को वह उत्सुक है?" बरसों, शताब्दियों से वह उसकी बाट देख रही है, और अब . . . रह गया है उसका वह अस्थिपंजर। उस छिटकी हुई चाँदनी में तारागण टिमटिमाते हुए मुस्करा कर उसकी ओर इङ्गित करते हैं—"क्या सुन्दरता की दौड़ इस अस्थिपंजर तक ही है?" और प्रति वर्ष जब मेघ-दल उन खण्डहरों पर होकर गुज़रता है तब वह पूछ बैठता है—"क्या कोई संदेशा भिजवाना है?" और तब उन खण्डहरों में गहरी निश्वास सुन पड़ती है और उत्तर मिलता है —"अब किस दिल से उसका स्वागत करूँ?" परन्तु दूसरे ही क्षण

उत्सुकता भरी काँपती हुई आवाज़ में एक प्रश्न भी होता है—"क्या अब भी उसे मेरी सुध है ?"

परन्तु...विस्मृति का वह काला पट !...दर्शक के प्रश्न के उत्तर में गाइड अपनी टूटी फूटी अंग्रेज़ी में कहता है—"इस नगरी को हिन्दुस्तान के बादशाह शाहंशाह अकबर ने कोई साढ़े तीन सौ वर्ष पहिले बनवाया था"।

अकशेप

अवशेष

महान् मुग़ल सम्राट् अकबर का प्यारा नगर—आगरा—आज मृतप्राय सा हो रहा है। उसके ऊबड़-खावड़ धूल भरे रास्तों और उन तंग गलियों में यह स्पष्ट देख पड़ता है कि किसी समय यह नगर भारत के उस विशाल समृद्धिपूर्ण साम्राज्य की राजधानी रहा था; किन्तु ज्यों ज्यों उसका तत्कालीन नाम "अकबराबाद" भूलता गया त्यों त्यों उसकी वह समृद्धि भी विलीन होती गई। इस नगरी के वृद्ध क्षीण हृदय जुमा मस्जिद में अब भी जीवन के कुछ चिह्न देख पड़ते हैं, किन्तु इसका बहुत कुछ श्रेय मुस्लिम काल की उन मृतात्माओं को है, अपने अंचल में समेट कर भी विकराल मृत्यु जिनको मानव-समाज के स्मृतिसंसार से सर्वदा के लिए निर्वासित नहीं कर सकी; काल के क्रूर हाथों उनका नश्वर शरीर नष्ट हो गया, सब कुछ लोप हो गया, किन्तु स्मृतिलोक में आज भी उनका पूर्ण स्वरूप विद्यमान है।

मुग़ल साम्राज्य भंग हो गया किन्तु फिर भी उन दिनों की स्मृतियाँ आगरा के वायुमण्डल में रम रही हैं। ज़मीन से मीलों ऊँची हवा में आज भी ऐश्वर्य-विलास की मादक सुगन्ध, भग्न प्रेम या मृत आदर्शों पर बहाए गए आँसुओं की वाष्प, तथा उच्छ्वासों और उसासों से तप्त वायु फैला हुआ है। भग्न मानव-प्रेम की वह समाधि, मुग़ल साम्राज्य के आहत यौवन का वह स्मारक, ताज, आज भी अपने आँसुओं से तथा अपनी आहों से आगरा के वायुमण्डल को वाष्पमय कर रहा है। आज भी उस चिरविरही प्रेमी के आँसुओं का सोता यमुना नदी में जाकर अदृश्य रूप से मिलता है। ताज में

दफ़नाए गए मुग़ल सम्राट् के तड़पते हुए युवा-हृदय की धुकधुकाहट से यमुना के वक्षःस्थल पर छोटी छोटी तरंगें उठती हैं, और दूर दूर तक उसके निश्वासों की मरमर ध्वनि आज भी सुन पड़ती है। कठोर भाग्य के सम्मुख सुकोमल मानव हृदय की विवशता को देख कर यमुना भी हताश हो जाती है, ताज के पास पहुँचते पहुँचते बल खा जाती है, उस समाधि को छूकर तो उसका हृदय द्रवीभूत हो जाता है, आँसुओं का प्रवाह उमड़ पड़ता है, वह सीधा बह निकलता है।

आगरे का वह उन्नत क़िला, अपने गत यौवन पर इतरा इतरा कर रह जाता है। प्रातःकाल बाल सूर्य की आशामयी किरणें जब उस रक्तवर्ण क़िले पर गिरती हैं, तब वह चौंक उठता है। उस स्वर्ण प्रभात में वह भूल जाता है कि अब उसके उन गौरवपूर्ण दिनों का अन्त हो गया है, और एक बार पुनः पूर्णतया कान्तियुक्त हो जाता है। किन्तु कुछ ही समय में उसका सुख-स्वप्न भंग हो जाता है, उसकी वह ज्योति और उसका वह सुखमय उल्लास, उदासी तथा निराशापूर्ण सुनसान वातावरण में परिणत हो जाते हैं। आशापूर्ण हर्ष से दमकते हुए उस उज्ज्वल रक्तवर्ण मुख पर पतन की स्मृति-छाया फैलने लगती है। और दिवस भर के उत्थान के बाद संध्या समय अपने पतन पर क्षुब्ध मरीचिमाली जब प्रतीची के पादप-पुंज में अपना मुख छिपाने को दौड़ पड़ते हैं और बिदा होने से पूर्व अश्रु-पूर्ण नेत्रों से जब वे उस अमर करुण कहानी की ओर एक निराशापूर्ण दृष्टि डालते हैं तब तो वह पुराना क़िला रो पड़ता है, और अपने लाल लाल मुख पर, जहाँ आज भी सौंदर्यपूर्ण विगत-यौवन की झलक देख पड़ती है अन्धकार का काला घूँघट खींच लेता है।

वर्त्तमानकालीन दशा पर ज्यों ही आत्मविस्मृति का पट गिरता है, अंतःचक्षु खुल जाते हैं और पुनः पुरानी स्मृतियाँ ताज़ी हो जाती हैं, उस पुराने रंगमंच पर पुनः उस विगत जीवन का नाटक देख

पड़ता है। सुन्दर सुम्मन बुर्ज़ को एक बार फिर उस दिन की याद आ जाती है, जब दुःख और करुणापूर्ण वातावरण में मृत्युशय्या पर पड़ा क़ैदी शाहजहाँ ताज को देख देख कर उसासें भर रहा था, जहान-आरा अपने सम्मुख निराशापूर्ण निस्संग करुण जीवन के भीषण तम को आते देख कर रो रही थी, जब उनके एकमात्र साथी, श्वेत पत्थरों तक के पाषाण-हृदय पिघल गए थे और जब वह रत्नखचित बुर्ज़ भी रोने लगा था, उसके आँसू ढुलक ढुलक कर ओस की बूंदों के रूप में इधर-उधर बिखर रहे थे।

और वह मोती मसजिद, लाल लाल क़िले का वह उज्ज्वल मोती ...आज वह भी खोखला हो गया। उसका ऊपरी आवरण, उसकी चमक-दमक वैसी ही है किन्तु उसकी वह आभा अब लुप्त हो गई। उसका वह रिक्त भीतरी भाग धूल-धूसरित हो रहा है, और आज एकाध व्यक्ति के अतिरिक्त उस मसजिद में परमपिता का भी नामलेवा नहीं मिलता। प्रति दिन सूर्य पूर्व से पश्चिम को चला जाता है, सारे दिन तपने के बाद संध्या हो जाती है, सिहर सिहर कर वायु बहती है, किन्तु ये शोयत प्रस्तर-खण्ड सुनसान अकेले ही खड़े अपने दिन गिना करते हैं। उस निर्जन स्थान में एकाध व्यक्ति को देख कर ऐसा अनुमान होता है कि उन दिनों यहाँ आने वाले व्यक्तियों में से किसी की आत्मा अपनी पुरानी स्मृतियों के बन्धन में पड़ कर खिंची चली आई है। प्रार्थना के समय "मुअज़्ज़न" की आवाज़ सुन कर यही प्रतीत होता है कि शताब्दियों पहिले गूंजने वाली हलचल, चहल-पहल तथा शोरगुल की प्रतिध्वनि आज भी उस सुन्दर परित्यक्त मसजिद में गूंज रही है।

उस लाल लाल क़िले में मोती मसजिद, ख़ास महल आदि श्वेत भव्य भवनों को देख कर यही प्रतीत होता है कि अपने प्रेमी की, अपने संरक्षक की मृत्यु से उदासीन होकर इस क़िले को वैराग्य हो गया, अपने अरुण शरीर पर शोयत भस्म रमा ली। उस महान् क़िले का

यह वैराग्य, उस जीवनपूर्ण स्थान की यह निर्जनता, ऐश्वर्य-विलास से भरपूर सोते में यह उदासी, और उन रंगबिरंगे, चित्रित तथा सजे-सजाए महलों का यह नग्न स्वरूप,...साधारण दर्शकों तक के हृदयों को हिला देता है, तब क्यों न वह क़िला सन्यास ले ले ! सन्यास, सन्यास...तभी तो चिरसहचरी यमुना को भी इसने लात लगा कर दूर हटा दिया, ठुकरा कर अपने से विलग किया, और अपने सारे बाह्य द्वार बन्द कर लिए। अब तो इनी-गिनी वार ही उसके नेत्र पटल खुलते हैं, संसार को दो नज़र देख कर पुनः समाधिस्थ हो जाता है वह क़िला। उस दुःखी दिल को सताना, उस निर्जन स्थान को फिर मनुष्य की याद दिलाना...भाई ! सम्हल कर जाना वहाँ; वहाँ के वे क्षुधित पाषाण, वह प्यासी भूमि...न जाने कितनी आत्माओं को निगल कर, न जाने कितनों के यौवन को कुचल कर, एवं न जाने कितनों के दिलों को छिन्न-भिन्न कर के उनके जीवन-रस को पीकर भी तृप्त नहीं हुई; आज भी वह आप के आँसुओं को पीने के लिए, कुछ क्षणों के लिए ही क्यों न हो आप की सुखद घड़ियों को भी विनष्ट करने को उतारू है।

उस क़िले का वह लाल लाल जहाँगीरी महल—सुरा, सुन्दरी और संगीत के उस अनन्य उपासक की वह विलास-भूमि—आज भी वह यौवन की लाली से रँगा हुआ है। प्रति दिन अंधकारपूर्ण रात्रि में जब भूतकाल की यवनिका उठ जाती है, तब पुनः उन दिनों का नाट्य होता देख पड़ता है, जब अनेकों की वासनाएँ अतृप्त रह जाती थीं, कइयों की जीवन-घड़ियाँ निराशा के ही अन्धकारमय वातावरण में बीत जाती थीं, और जब प्रेम के उस बालुकामय शान्ति-जल-विहीन ऊसर में पड़े पड़े अनेकों उसकी गरमी के मारे तड़पते थे। उस सुनसान परित्यक्त महल में रात्रि के समय सुन पड़ती हैं उल्लासपूर्ण हास्य तथा विषादमय करुण क्रन्दन की प्रतिध्वनियाँ। वे अशान्त आत्माएँ आज भी उन वैभवविहीन खण्डहरों में घूमती

हैं और सारी रात रो रो कर अपने अपार्थिव अश्रुओं से उन पत्थरों को लथपथ कर देती हैं। किन्तु जब धीरे धीरे पूर्व में अरुण की लाली देख पड़ती है, आसमान पर स्वच्छ नीला नीला परदा पड़ने लगता है, तब पुनः इन महलों में वही सन्नाटा छा जाता है, और निस्तब्धता का एकछत्र साम्राज्य हो जाता है। उन मृतात्माओं की यदि कोई स्मृति शेष रह जाती है तो उनके वे बिखरे हुए अश्रु-कण, किन्तु क्रूर काल उन्हें भी सुखा देना चाहता है। यहाँ की शांति यदि कभी भंग होती है तो केवल दर्शकों की पद-ध्वनि से तथा "गाइडों" की टूटी-फूटी अंग्रेजी शब्दावली द्वारा। रात और दिन में कितना अन्तर होता है! विस्मृति के पट के इधर और उधर... एक ही पट की दूरी, वास्तविकता और स्वप्न, भूत तथा वर्तमान... कुछ ही क्षणों की देरी और हज़ारों वर्षों का सा भेद...कुछ भी समझ नहीं पड़ता कि यह है क्या।

उस मृतप्राय क़िले के अब केवल कंकालावशेष रह गए हैं; उसका हृदय भी बाहर निकल पड़ा हो ऐसा प्रतीत होता है। नक्षत्र-खचित आकाश के चँदवे के नीचे पड़ा है वह काले पत्थर का टूटा हुआ सिंहासन, जिस पर किसी समय गुदगुदे मखमल का आवरण छाया हुआ होगा; और जिस पत्थर तक को सुशोभित करने के लिए, जिसे सुसज्जित बनाने के वास्ते अनेकानेक प्रयत्न किए जाते थे, आज उसी की यह दशा है। वह पत्थर है, किन्तु उसमें भी भावुकता थी; वह काला है, किन्तु फिर भी उसमें प्रेम का शुद्ध स्वच्छ सोता बहता था। अपने निर्माता के वंशजों का पूर्ण पतन तथा उनके स्थान पर छोटे छोटे नगण्य शासकों को सिर उठाते देख कर जब इस क़िले ने वैराग्य ले लिया, अपने यौवनपूर्ण रक्तमय गात्रों पर भगवाँ डाल लिया, शोयत भस्म रमा ली, तब तो उसका वह छोटा हृदय भी क्षुब्ध होकर तड़प उठा, अपने आवरणों में से बाहर निकल पड़ा, वह बेचारा भी रो दिया। वह पत्थर-हृदय भी अन्त में विदीर्ण हो गया और उसमें से भी रक्त की

दो बूँदें टपक पड़ीं। मुग़लों के पतन को देखकर पत्थरों तक का दिल टूट गया, उन्होंने भी रुधिर के आँसू वहाए...परन्तु वे मुग़ल, उन महान् सम्राटों के वे निकम्मे वंशज, ऐश्वर्य-विलास में पड़े सुखनींद सो रहे थे;...उनकी वही नींद चिर निद्रा में परिणत हो गई।

और वह शीशमहल, मानव-कांचन-हृदय के टुकड़ों से सुशोभित वह स्थान कितना सुन्दर, दीप्तिमान, भीषण तथा साथ ही कितना रहस्यमय भी है! यौवन, ऐश्वर्य तथा राजमद से उन्मत्त सम्राटों को अपने खेल के लिए मानव हृदय से अधिक आकर्षक वस्तु न मिली। अपने विनोद के लिए, अपना दिल वहलाने के हेतु उन्होंने अनेकों के हृदय चकनाचूर कर डाले। भोले भाले हृदयों के उन स्फटिक टुकड़ों से उन्होंने अपने विलास-भवन को सजाया। एक बार तो वह जगमगा उठा। टूट कर भी हृदय अपनी सुन्दरता नहीं खोते, उसके विपरीत रक्त से सने हुए वे टुकड़े अधिकाधिक आभा-पूर्ण देख पड़ते हैं। परन्तु जब साम्राज्य के यौवन की रक्तिम ज्योति विलीन हो गई, जब उस चमकते हुए रक्त की लाली भी कालिमा में परिणत होने लगी, तब तो मानव जीवन पर कालिमामयी यवनिका डालने वाली उस कराल मृत्यु का भयंकर तमसावृत्त पटल उस स्थान पर गिर पड़ा; उस शीशमहल में अन्धकार ही अन्धकार छा गया।

मानव हृदय एक भयंकर पहेली है। दूसरों के लिए एक वन्द पुर्ज़ा है; उसके भेद, उसके भावों को जानना एक असम्भव वात है। और उन हृदयों की उन गुप्त गहरी दरारों का अन्धकार,...एक हृदय के अन्धकार को भी दूर करना कितना कठिन होता है, और विशेषतया उन दरारों को प्रकाशपूर्ण बनाना...और यहाँ तो अनेकों मानव हृदय थे, सैकड़ों हज़ारों—और उन हृदयों के टुकड़े, वे सिकुड़े हुए रक्त से सने खण्ड...उन्होंने अपनी दरारों में संचित अन्धकार को उस शीशमहल में उँडेल दिया। मुग़लों ने शीशमहल की

सृष्टि की, और सोचा कि प्रत्येक मानव हृदय में उन्हीं का प्रतिबिम्ब दिखाई देगा...परन्तु यह कालिमा और मानव हृदय की वे अनबूझ पहेलियाँ...। मुग़लों ने उमड़ते हुए यौवन में, प्रेम के प्रवाह में एक चमक देखी और उसी से सन्तुष्ट हो गए। दर्शकों को भी सम्यक् प्रकारेण बताने के लिए, तथा उस अन्धकार को क्षण भर के लिए मिटाने के हेतु गन्धक जला कर आज भी ज्योति की जाती है। मुग़लों के समान दर्शक भी उन काँच के टुकड़ों में एक बार अपना प्रतिबिम्ब देख कर समझते हैं कि उन्होंने सम्पूर्ण दृश्य देख लिया। परन्तु उस अन्धकार को कौन मिटा सकता है? कौन मानव हृदय के तल को पहुँच पाया है? किसे उन छोटे छोटे दिलों का रहस्य जान पड़ा है? कौन उन टूटे हुए हृदयों की सम्पूर्ण व्यथा को, उनकी कसक को समझ सका है?...यह अन्धकार तो निरन्तर बढ़ता ही जाता है।

सुन्दरता में ताज का प्रतियोगी, ऐतमादुद्दौला का मक़बरा, भाग्य की चंचलता का मूर्तिमान् स्वरूप है। राह राह भटकने वाले भिखारी का मक़बरा, भूखों मरते तथा भाग्य की मार से पीड़ित रंक की क़ब्र ऐसी होगी, यह कौन जानता था? यह श्वेत समाधि भाग्य के कठोर थपेड़े खाए हुए व्यक्ति के सुखान्त जीवन की कहानी है। श्वेत पत्थर के इस मक़बरे के स्वरूप में सौभाग्य घनीभूत हो गया है। यौवन-मद से उन्मत्त साम्राज्य में नूरजहाँ के उत्थान के साथ ही वासनाओं के भावी अन्धड़ के आगम की सूचना देने वाली तथा उस अन्धड़ में भी साम्राज्य के पथ को प्रदीप्त करने वाली यह ज्योति मुग़ल स्थापत्य-कला की एक अद्भुत वस्तु है।

और उस मृतप्राय नगरी से कोई पाँच मील दूर स्थित है वह अस्थि-विहीन पञ्जर। अपनी प्रियतमा नगरी की भविष्य में होने वाली दुर्दशा की आशंका तक से अभिभूत होकर ही अकबर ने अपना अन्तिम निवासस्थान उस नगरी से कोसों दूर बनाने का आयोजन किया

था। अकबर का सुकोमल हृदय मिट्टी में मिल कर भी अपनी कृतियों की दुर्दशा नहीं देख सकता था, और न देखना ही चाहता था। उस शान्त-वातावरण-पूर्ण सुरम्य उद्यान में स्थित यह सुन्दर समाधि अपने ढंग की एक ही है। अकबर के व्यक्तित्व के समान ही समाधि दूर से एक साधारण सी वस्तु जान पड़ती है, किन्तु ज्यों ज्यों उसके पास जाते हैं, उस समाधि भवन में पदार्पण करते हैं, त्यों त्यों उसकी महत्ता, विशालता एवं विशेषताएँ अधिकाधिक दिखाई पड़ती हैं। उस महान् अव्यवहारिक धर्म 'दीन-ए-इलाही' के इस एकमात्र स्मारक को निर्माण करने में अकबर ने अनेकानेक वास्तुकलाओं के आदर्शों का अनोखा सम्मिश्रण किया था।

ध्रुव की ओर सिर किए अकबर अपनी क़ब्र में लेटा था। एक ध्रुव को लेकर ही उसने अपने समस्त जीवन तथा सारी नीति की स्थापना की थी, और उसके उस महान् आदर्श ने, विश्व-बन्धुत्व के उस टिमटिमाते हुए ध्रुव ने मृत अकबर को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अकबर का वह छोटा सा शव उस विशाल समाधि में भी नहीं समा सका, वह वहाँ शान्ति से नहीं रह सका। विश्व-प्रेम तथा मानव-भ्रातृत्व के प्रचारक अकबर के अन्तिम अवशेष, वे मुट्ठी भर हड्डियाँ भी विश्व में मिल जाना चाहती थीं। विशाल हृदय अकबर मर कर भी कठोर पत्थरों की उस विशाल, किन्तु आत्मा की दृष्टि से बहुत ही संकुचित, परिधि में नहीं समा सका। अपने अप्राप्त आदर्शों की ही अग्नि में जल कर उसकी अस्थियाँ भी भस्मसात् हो गईं, और वह भस्म वायु-मण्डल में व्याप्त होकर विश्व के कोने कोने में समा गई। अकबर की हड्डियाँ भस्मीभूत हो गईं, परन्तु अपने आदर्शों को न प्राप्त कर सकने के कारण उस महान् सम्राट् की वह प्रदीप्त हृदय-ज्वाला आज भी बुझी नहीं है; उस मिट्टी के दीपक-रूपी हृदय में अगाध मानव स्नेह भरा है, उसमें सदिच्छाओं तथा शुभ भावनाओं की शुद्ध श्वेत वत्ती पड़ी है, और वह दिया तिल तिल

कर जलता है। वह टिमटिमाती हुई लौ आज भी अकबर की समाधि पर जल रही है, और धार्मिक संकीर्णता के अन्धकार से पूर्ण, विश्व के सदृश्य गोल तथा विशाल गुम्बज़ में वह उस महान् आदर्श की ओर इंगित करती है, जिसको प्राप्त करने के लिए शताब्दियों पहिले अकबर ने प्रयत्न किया था, और जिसे आज भी भारतीय राष्ट्र नहीं प्राप्त कर सका है।

मानव जीवन एक पहेली है, और उससे भी अधिक अनबूझ वस्तु है विधि का विधान। मनुष्य जीवन के साथ खेलता है, जीवन ही उसके लिए मनोरंजन की एकमात्र वस्तु है, और वही जीवन इस लोक में फैल कर संसार-व्यापी हो जाता है। संसार उस बिखरे हुए जीवन को देख कर हँस देता है या ठुकरा देता है। परन्तु जीवन बीत चुकने पर जब मनुष्य उसे समेट कर इस लोक से विदा लेता है तब संसार उस विगत आत्मा के संसर्ग में आई हुई वस्तुओं पर प्रहार कर या उन्हें चूम कर समझ लेता है कि वह उस अन्तर्हित आत्मा के प्रति अपने भाव प्रकट कर रहा है। उस मृत व्यक्ति के पाप या पुण्य का भार उठाते हैं उसके जीवन से सम्बद्ध ईंट और पत्थर, उसकी स्मृतियों के अवशेष। किसका कृत्य और किसे यह दण्ड......परन्तु यही संसार का नियम है, विधि का ऐसा ही विधान है।

बिखरे पड़े हैं मुग़ल सम्राटों के जीवन के भग्नावशेष, उस मृत-प्राय नगरी में। जिन्होंने उस नगरी का निर्माण किया था उनका अन्त हो गया, उनका नामलेवा भी न रहा। सब कुछ विनष्ट हो गया; वह गौरव, वह ऐश्वर्य, वह समृद्धि, वह सत्ता—सब विलीन हो गए। मुग़ल साम्राज्य के उन महान् मुग़ल सम्राटों की स्मृतियाँ, उन स्मृतियों के वे रहे-सहे अवशेष, यत्र-तत्र बिखरे हुए वैभवविहीन वे खण्डहर, उन सम्राटों के विलास-स्थान, ऐश्वर्य के वे आगार, उनके मनोभावों के वे स्मारक......सब शताब्दियों से धूल-धूसरित

हो रहे हैं, पानी-पत्थर, सरदी-गरमी की मार सह रहे हैं। उन्हें निर्माण करने में, उनके निर्माताओं के लिए विलास और सुख की सामग्री एकत्र करने में जो-जो पाप तथा सहस्रों दरिद्रियों एवं पीड़ितों के हृदयों को कुचल कर जो-जो अत्याचार किए गए थे, उन्हीं सब का प्रायश्चित आगरे के ये भग्नावशेष कर रहे हैं। कब जाकर यह प्रायश्चित सम्पूर्ण होगा, यह कौन जानता है कि कुछ बता सके।
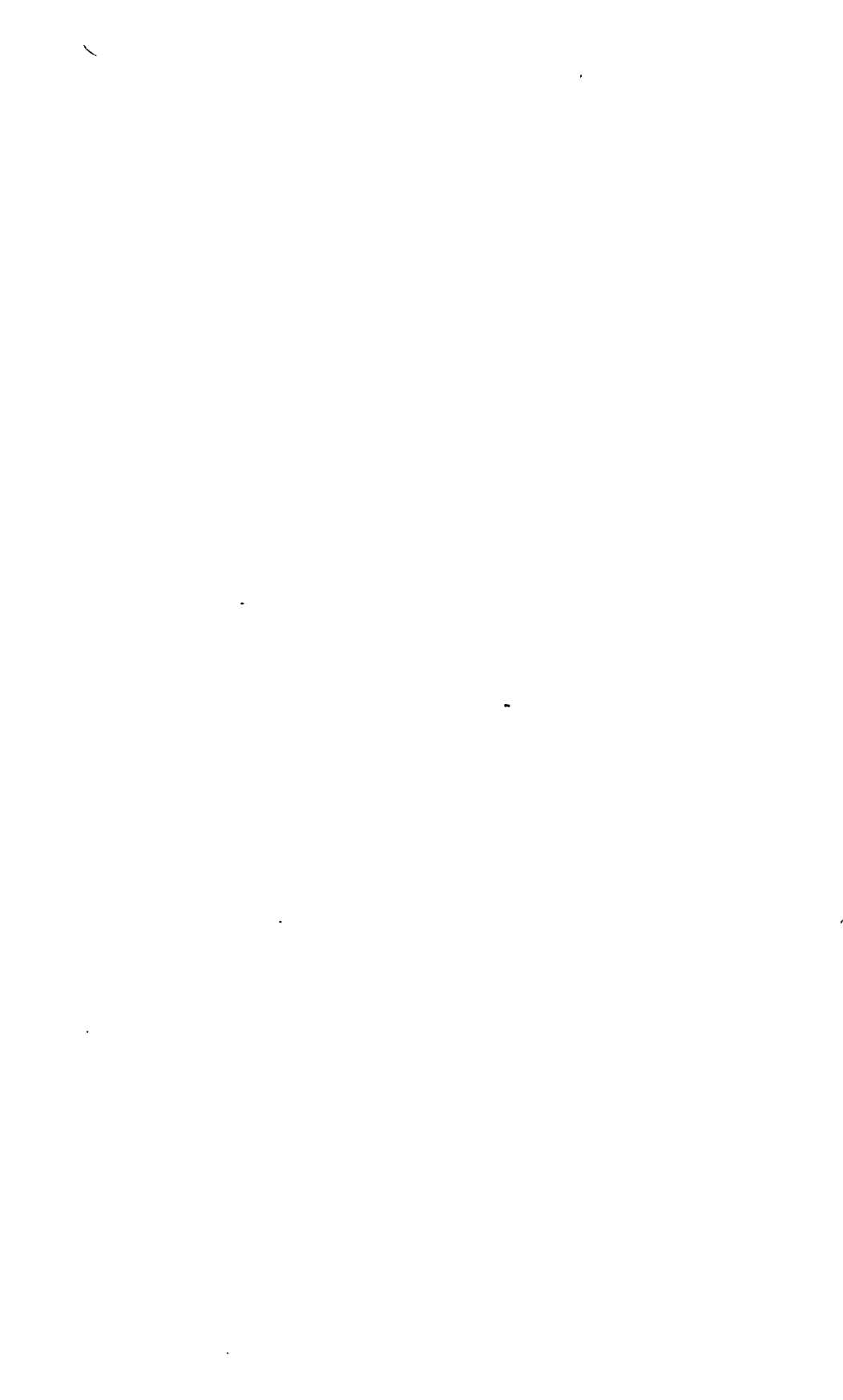
तीन कब्रें

तीन कब्रें

अनन्तयौवना राज्यश्री द्वारा पाले पोसे गए मुग़ल साम्राज्य का यौवन फूट निकला; अँगड़ाई लेकर उसने पैर पसारे। साम्राज्य के अंग अंग में नवीन स्फूर्ति का रक्त दौड़ रहा था। उसका वक्षःस्थल फूल गया, धमनियों में कम्पन होने लगा। भारतीय साम्राज्य के मुख पर नवयौवन की लाली फैलने लगी, उसके उन उजले उजले कपोलों पर गुलाबी रंग के महलों की रक्तिम रेखाएँ यत्र-तत्र दिखाई देने लगीं। राजधानी-रूपी हृदय की धड़कन प्रारम्भ हुई। अपने उमड़ते हुए यौवन के साथ वह छोटा सा हृदय भी फैलने लगा।

वह मस्ताना यौवन था । धन-धान्य-पूर्ण साम्राज्य ने आँखें खोलीं तो देखा नवजीवन का वह सुनहला प्रभात। सौभाग्य के बाल रवि की लाल-लाल किरणों ने पूर्वी आकाश को रक्तवर्ण कर दिया; दुर्भाग्य-घन-घटा के कुछ अवशिष्ट यत्र-तत्र बिखरे टुकड़े भी अब विलीन होने की चेष्टा कर रहे थे। और उस यौवन में नवयुवा साम्राज्य को अकबर ने पिलाई राजमद की वह लाल-लाल मदिरा। उसकी मदमाती सौरभ से ही अनुभवहीन युवा मस्त हो गया, और उसको पीकर तो बेसुधि बेतरह छा गई; यौवन की मस्ती पर राजमद का वह प्याला......ओह! बहुत था वह नशा, साम्राज्य तो बदहोश हो गया, मस्त होकर नशे में झूमने लगा।

और उन मदमाते दिनों में अकबर ने पुत्र का मुँह देखा। यौवन की मस्ती से झूमता हुआ, राजमद को पीकर उन्मत्त, निरन्तर स्वप्नलोक में विचरने वाला अकबर ही तो सलीम का पिता था। उन सुनहले दिनों में मादक सौरभ से पूर्ण उस मस्ताने वातावरण में, राज्य-

श्री ने अपने लाड़ले सलीम को पाला पोसा। आशापूर्ण आकाश के उस जगमगाते हुए चँदवे के नीचे सलीम के बाल्यकाल के दिन बीते। ऐश्वर्य के उस विषैले किन्तु सुनहले चमचमाते हुए वातावरण में उसका लालन-पालन हुआ।

बरसों बाद साम्राज्य-उद्यान का वह अनोखा सुन्दर पुष्प बसंत की बयार के स्पर्श का अनुभव कर जब खिलने लगा तब तो अपने यौवन पर इठलाते हुए साम्राज्य ने उसका स्वागत किया, अनन्त-यौवना ने उसको चूम कर उसकी बलैय्याँ लीं। युवा साम्राज्य के शाहज़ादे का यौवन था। ऐश्वर्य और विलासिता के मदमाते सौरभ ने सलीम को अशक्त कर दिया—सुखस्वप्न की मृगमरीचिका की ओर वह अनजाने खिंचा चला गया, सुख-सरिता में वह बह निकला।

× × ×

किन्तु खिलते हुए पुष्प की वह तड़प, उमड़ते हुए यौवन की वह कसक......शाहज़ादा बल खा खा जाता था। वह प्यासा हृदय प्रेम-जल की खोज में निकला। सुख-स्वप्न-लोक में उसने कितने ही दृश्य देखे थे, किन्तु उन्होंने तो उमड़ते हुए यौवन की इस चिनगारी को अधिकाधिक प्रज्वलित किया। जीवन-प्रभात में ओस-रूपी स्वर्गीय प्रेम-कणों को बटोरने के लिए वह पुष्प खिल उठा, पँखुड़ियाँ अलग अलग हो गईं। अपने दिल को हाथों में लेकर सलीम प्रेमलोक में सौदा करने को निकला।

प्यासे को पानी पिलाने वाला मिल ही तो गया। सलीम के हृदय-रूपी प्याले में प्रेम-सलिल की दो बूँदें टपक ही तो पड़ीं। उस तड़पते हुए हृदय को एक आसरा मिला। चार आँखों का मिलन ......दो बन्द किन्तु उमड़ते हुए सोते खुल पड़े। दो भोले भाले हृदयों का उलझ पड़ना, अनजाने बँध जाना, दो प्यासों का साथ बैठ कर एक ही सोते से प्रेम-जल पीना......ऊषा की उन अधखुली पलकों ने, संध्या की उस रक्तिम गोधूली ने, तथा शरद

की उस शुभ्र चाँदनी न देखा। किन्तु......आह! यह सुख उनसे देखा न गया। अनारकली को खिलते देखकर चाँद जल उठा, उस ईर्ष्याग्नि में वह दिन दिन क्षीण होने लगा। ऊषा ने अनारकली की मस्ती से भरी अलसाई हुई उन अधखुली पलकों को देखा और क्रोध के मारे उसकी आँख लाल हो गई। गोधूली ने यह अपूर्व सुखद मिलन देखा और अपने अचिरस्थायी मिलन को याद कर उसने अपने मुख पर निराशा का काला घूंघट खींच लिया।

साम्राज्य का शाहज़ादा......और अनारकली पर मुग्ध हो......, साम्राज्य, कठोर-हृदय साम्राज्य को यह बात ठीक न लगी। उन सुखद घड़ियों की बाट जोहना, वे तरसती हुई आँखें, उनकी वह प्यासी दृष्टि, कुछ अधकही बातें, धड़कता हुआ दिल, दो चुम्बन, पुन: मिलने के वे वादे, वियोग पर वे दो आहें...... आह! इन सब का अन्त हो गया; उस भोली भाली बालिका को बलिदान कर डाला। प्रेम-मदिरा का वह छलकता हुआ प्याला पृथ्वीतल पर उँडेल दिया गया; वह मदिरा पृथ्वीतल में समा गई और वह प्याला....क्रूर काल ने उसे चूर चूर कर डाला। प्रेम की वेदी पर वह सुन्दर खिलती हुई कली कुचल दी गई। खिलने भी न पाई थी, उसकी वह कसक अभी मिटी न थी कि वह भूतकाल की वस्तु हो गई। कितनी निष्ठुरता......कठोर निर्जीव साम्राज्य के लिए सुकोमल धड़कते हुए हृदय का कुचला जाना, वारांगना राज्यश्री को आकर्षित करने के लिए सच्ची प्रेमिका को बलिदान कर देना, ...किन्तु यही संसार की रीति है।

और अनारकली ने सहर्ष आत्मसमर्पण किया। प्रेमाग्नि की उस लपलपाती हुई उद्दीप्त लौ में जल कर उस सुन्दर तितली ने अपना अस्तित्व मिटा दिया। प्रेम की वेदी पर अपनी हस्ती मिटा कर उसने अपने प्रेमी को बचा लिया। उसने जीवित समाधि ले ली; अपने धधकते हुए हृदय को लेकर, अपने जीवन की आकांक्षाओं

को निराशा के काले अंचल में समेट कर वह जगन्माता पृथ्वी में समा गई। उसके उमड़ते हुए यौवन के वे अवशेष, खिलती हुई कली की वह तड़प, आते हुए वसंत की वह सुखदायक समीर, सुमधुर संगीत की वह प्रथम तान ......अकाल में ही विलीन होकर ये चिरकालीन प्रकृति में धीरे धीरे प्रस्फुटित हुए।

जहाँगीर के नवयुवा सुकोमल हृदय को भीषण चोट पहुँची। उसके छोटे से दिल में गहरा घाव लगा, किन्तु वह तड़प कर रह गया, विवश था। उसका रोष पानी पानी होकर वह निकला। किन्तु उसके भावों का वह प्रवाह भी अतृप्त प्रेमाग्नि की आँच न सह कर सूखता गया। दो आँसू टपके, कुछ आहें निकलीं। प्रेम-प्रभात का वह सुनहला आकाश छिन्न-भिन्न हो गया। उन सुखपूर्ण दिनों की, उस सुनहले प्रेमस्वप्न की अब शेष रह गईं केवल कुछ कसक भरी स्मृतियाँ।

× × ×

और खिलते हुए प्रेम-पुष्प की वह समाधि, बलिदान की वह क़ब्र,....वहाँ तब कुछ भी न था। बरसों बाद जब सलीम सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसका वह मृत प्रेम पुनः उमड़ पड़ा। उसके हृदय-संसार में फिर जो बवण्डर उठा तो यह आँधी उसके जले हुए भावों की भस्म को भी यत्र-तत्र बिखेरने लगी। अपने हृदय के प्रथम व्रण की, अपने सुन्दर सुनहले जीवन-प्रभात की स्मृति का साकार स्वरूप, उनका स्मारक, देखने के लिए वह उत्सुक हो उठा। इतने बरसों बाद भी जहाँ उस मृत प्रेमिका के लिए स्थान था, जहाँ तब भी उसकी स्मृति विद्यमान थी, जहाँ तब भी अनन्त में विलीन हो जाने वाली उस मृता प्रियतमा के लिए प्रेमाग्नि धधक रही थी—अपने उसी हृदय के अनुरूप उसने वह सुन्दर क़ब्र बनवाई। अनारकली की स्मृति बरसों विस्मृति के काले पट में ढकी जहाँगीर के हृदय में रही—अब तो जहाँगीर ने अनारकली के अवशेपों को भी प्रेमस्मृति

के गाढ़ आलिंगन में लिपटा लिया, समाधि-रूपी स्मारक के कठोर आलिंगन में उन्हें जकड़ लिया।

जहाँ प्रथम वार अनारकली दफ़नाई गई थी, कठिनाई से घूमते-घामते वहाँ पहुँच पाते हैं; किन्तु ज्योंही वहाँ पहुँचते हैं हमें दिखाई देता है कि वह वहाँ नहीं है। जहाँ उसका एकछत्र राज्य था, जिस हृदय पर एक समय उसका ही अधिकार था, उस पर अब दूसरों का आधिपत्य होते देख कर क़ब्र में भी अनारकली का शव सिहर उठा, और भावावेश में आकर उसका वह अस्थिपंजर भी वहाँ से उठ कर चल दिया। मानव हृदय की भूलने की लत का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण और कहाँ मिलेगा ?

संसार के लिए मानव जीवन एक खेल है, मनोरंजन की एक अद्भुत सामग्री है। मानव हृदय एक कौतूहलोत्पादक वस्तु है। उसे तड़पते देख कर संसार हँसता है, उसके दर्द को देख कर उसे आनन्द आता है; और यदि संसार को मानव हृदय से भी अधिक आकर्षक कोई दूसरी वस्तु मिल जाय तो वह उसे भी भुला देगा ! कितनी वेदर्दी ! कितनी निष्ठुरता ! संसार का यह खिलवाड़ चोट खाए हुए मनुष्य को रुला देता है।

जो भारतीय साम्राज्य के शाहज़ादे की प्रेमपात्री थी, जिसके पैरों में मुग़ल घराने का सिरमौर लोटता था, संसार ने उसी अनारकली को मृत्यु के बाद क़ब्र में भी सुखपूर्वक नहीं सोने दिया, उसे उठाकर एक कोने में पटक दिया; अपने स्मृतिलोक से ही नहीं, अपने हृदय से भी निकाल वाहर किया......और रावी की वह धारा, अनारकली के उस भग्न प्रेम पर वहाए गए आँसुओं का वह प्रवाह......वह भी उसे छोड़ चला। वे आँसू सूख गए, और उसका वह शुष्क वक्षःस्थल आज खण्ड खण्ड होकर सहस्र रेणु-कणों के स्वरूप में विखरा पड़ा है।

संसार ने उसे भुला दिया। उस राह से, उस अनारकली गली

से, न जाने कितने आते हैं, और न जाने कितने चले जाते हैं, किन्तु कितनों को धधकते हुए चोट खाए हुए उस हृदय की याद आती है ? कितने ऐसे हैं जो उस कलिका के अकाल में ही मुरझाने पर दो आँसू टपकाते हैं, दो उसासें भरते हैं ? अपनी अपनी आपत्तियों और निराशाओं का भार उठाए प्रत्येक मनुष्य चला जाता है, अपनी ही करुण कहानी को याद कर वह रोता है; कहाँ है उसके पास आँसुओं का वह अक्षय सागर कि वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए उन्हें बहावे ?

× × ×

जहाँगीर के जीवन का यौवन-प्रभात प्रेम पर शहीद होने वाली प्यारी अनारकली के रुधिर से रँगा हुआ था। उस स्वप्नलोक में उसके दिल के टुकड़े ही यत्र-तत्र बिखरे पड़े थे; अपने टूटे हृदय में से टपक पड़ने वाली रुधिर की बूँदें धीरे धीरे उसके सारे जीवन को रँग रही थीं। उसी लाली में जहाँगीर ग़र्क़ हो गया। किन्तु समय के साथ जब धीरे धीरे यह लाली विलीन होने लगी, तब तो जहाँगीर ने प्याले में मदिरा ढाली, उस मदिरा की लाली में उसने सारे जग को देखा, अपने प्याले की उस लाली से उसने सारे जहान को रँग दिया। अपनी इच्छा पूर्ण करने वाले उस प्याले को जी भर कर चूमा; और होते होते उस प्याले के प्रति जहाँगीर के हृदय में इतना प्रेम उमड़ा कि वह स्वयं एक प्याले में कूद पड़ा।......प्याला ! वह लाल लाल लबालब भरा प्याला ! ......आह ! वह कितना प्यारा था !

अपने जीवन-प्रभात में ही वह अलसाया हुआ, चोट खाकर घायल पड़ा था। संसार के प्रति उदासीन, आँखें बन्द किए, वह पड़ा पड़ा अपने ही स्मृतिलोक में घूमता था। पुरानी स्मृतियों को याद कर-कर वह झूमता था, रोता था, किन्तु संसार उसके प्रति उदासीन न था; भाग्य से यह देखा न गया कि जहाँगीर यों ही अकर्मण्य पड़ा विस्मरणीय विगत बातों को याद कर पुराने दिनों के सपने देखे।

राह-राह की भिखारिन ने उस अलसाए हुए जहाँगीर को ठोकर मार कर जगा दिया। वह युवा-सुन्दरी न जाने किन किन अज्ञात देशों से घूमती-घामती शाहज़ादे की राह में आ पहुँची। सलीम तो उसे देख कर पागल हो गया; उसका छोटा सा हृदय पुनः मचल गया। किन्तु भाग्य से कौन लड़ सका है? प्यासे को पानी का प्याला दिखा-दिखा कर उसे तरसाने में ही उस कठोर नियति को आनन्द आता है। जिसे अपनाने के लिए वह उत्सुक हो रहा था, वह पराई हो गई, उसकी देखती आँखों विहार भेज दी गई। उसके चोट खाए हुए हृदय पर पुनः आघात लगा, वह विष का घूँट पीकर रह गया।

उस सुन्दर मस्ताने यौवन-प्रभात की एक मनोहारी झलक ने, प्रेमोद्यान की मादक सुगन्धित समीर के एक झोंके ने, खिलते हुए प्रेम-पुष्प की एक झाँकी ने, तथा मधुर रागिनी की प्रथम तान ने ही उस मदमाते शाहज़ादे को मतवाला बना दिया। प्याले पर प्याला ढल रहा था, और उस पर इस मधुर स्मृति का भार तथा भावी आशाओं की उत्सुकता......शाहज़ादा पड़ा उस दिन की बाट जोहने लगा, जब वह स्वच्छन्द होकर अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण कर सकेगा। मानवीय-भावरूपी सागर के वक्षःस्थल पर एक बार लहरें उठ चुकी थीं, वे कल्लोल कर कठोर भाग्य-रूपी किनारे पर टकरा कर खण्ड खण्ड होकर बिखर चुकी थीं। किन्तु उस कल्लोल की वह सुन्दर ध्वनि अब भी उसके कानों में गूँज रही थी। उस शाहज़ादे का हृदय-संसार शान्त होकर उस दिन की राह देख रहा था, जब पुनः यवनिका उठेगी, जब पुनः वे सुखद दृश्य देखने को मिलेंगे, और जब एक बार फिर अपने प्रेमी को देखकर उस प्रेमिका के वक्षःस्थल में भावों का बवण्डर उठेगा, उसके प्रेम का सागर उमड़ पड़ेगा, उसमें तरंगें उठेंगी, और उन तरंगों पर नृत्य करेगी वह प्रेम-सुन्दरी। सारा संसार जब स्तब्ध होकर उस दृश्य को देखेगा, और जब सलीम स्वयं अपनी प्रेयसी को गले से लगाने के लिए दौड़ कर

उस प्रेम-महोदधि में कूद पड़ेगा; तथा जब उस तारकमय आकाश के नीचे उस छिटकी हुई चाँदनी में निर्जन वन भी स्वर्ग से अधिक सुखदायक होगा, संगीत की मधुर तान से भी अधिक आकर्षक होगी वह शान्त निस्तब्धता, जब प्रेमाग्नि में भी चाँदनी की सी शीतलता आ जावेगी, और जब जलते हुए अंगारों से ही हृदय की वह प्यास बुझेगी......किन्तु यह तो सारा एक सुख-स्वप्न था, और इसी स्वप्नलोक में विचरता था वह शाहज़ादा।

× × ×

और बरसों बाद जब पुनः उस निराशा के तम में आशा-ज्योति की प्रथम रेख दिखाई पड़ी, तब तो शाहज़ादे को अपनी अनुभूति का ख़याल आया। टूटे हुए दिल को लेकर जहाँगीर ने संसार की रक्षा करने के लिए कमर बाँधी; उसे तो आशा का ही एकमात्र सहारा था।

और आधे युग के संघर्ष के बाद अपने मृत पति के प्रति कर्तव्य की भावना पर जब नूरजहाँ के प्रेमपिपासु आकांक्षापूर्ण हृदय ने विजय पाई, और जब उस चोट खाए हुए भग्न हृदय वाले जहाँगीर को उसने गले से लगाया, तब तो निराशातम से घिरे हुए उस छिन्न-भिन्न हृदय को कुछ संतोष हुआ, कुछ तृप्ति हुई, किन्तु पहिले की सी मस्ती नहीं आई। बरसों के मान के बाद नूरजहाँ ने जहाँगीर को इच्छित वर दिया; जहाँगीर तो आनन्द के मारे पागल हो गया। पुनः प्रेम-मदिरा का प्याला भरा जाने लगा, किन्तु इस समय जहाँगीर के यौवन-अर्क की तेज़ी घटने लगी थी। गहरी चोटों की कसक अब भी शेष थी। उस तृप्ति में, उस सुखपूर्ण जीवन में भी कुछ दर्द का अनुभव होता था। बरसों प्रेमाग्नि में जल-जल कर उसका हृदय झुलस गया था; वह अधजला दिल अपने फफोलों के दर्द के मारे फड़फड़ाता था। इसी कसक के कारण जहाँगीर जीवन भर तड़पता रहा। अपने इस दर्द को भुलाने के लिए, अपनी पुरानी

दुःखपूर्ण स्मृतियों को मिटाने के हेतु, तथा यौवन की मस्ती का पुनः आह्वान करने को ही जहाँगीर ने मदिरा-देवी की उपासना की।

भग्न हृदयों में नवीन आशा का संचार हो सकता है, मनुष्य की पुरानी स्मृतियाँ कुछ काल के लिए भुलाई जा सकती हैं, उसका वह मस्ताना यौवन उसके स्वप्नलोक में पुनः लौट सकता है; किन्तु कहाँ है वह मरहम जिससे वे व्रण, नियति की गहरी चोटों के वे चिह्न, सर्वदा के लिए मिट सकेंगे; कहाँ है वह अथाह सागर जिसमें मनुष्य अपने भूतकाल को चिरकाल के लिए डुबो दे; कहाँ है वह जादू भरा पानी जिससे मनुष्य अपने स्मृति-पटल पर अंकित स्मृतियों को सर्वदा के लिए धो डाले; तथा कहाँ है वह जादू भरी लकड़ी जिससे मनुष्य का सुख-स्वप्न एक चिरस्थायी सत्य हो जाय ? संसार को सुखलोक बनाने और अपने स्वप्नों को यथार्थता में परिणत करने का प्रयत्न करना मनुष्य के स्वाभाविक भोलेपन का एक अच्छा उदाहरण है। वह मृगमरीचिका के पीछे दौड़ता है, किन्तु प्यास बुझना तो दूर रहा, प्यास के मारे ही तड़प तड़प कर वह मर जाता है।

अपनी प्रेम-मूर्ति नूरजहाँ को पाकर जहाँगीर ने उसके प्रति आत्मसमर्पण किया, उसके चरणों में सारे साम्राज्य एवं सारी सत्ता को रख दिया। नूरजहाँ ने उन्हें ग्रहण किया। हृदयों पर शासन करते करते अब उसे साम्राज्य पर शासन करने का चस्का लगा। भारत पर अब मानवीय भावों का दौर दौरा हो गया। एक ववण्डर उठा, एक भयंकर तूफ़ान आया, साँय-साँय करती हुई आँधी चलने लगी और सर्वत्र प्रलय के चिह्न दिखाई देने लगे। ख़ुसरो, प्यारा ख़ुसरो, न जाने कहाँ चला गया; उस दुर्दिन में उसके गुम हो जाने का पता भी न लगा। ख़ुर्रम को भी कहाँ का कहाँ उड़ा दिया। शहरयार तो बेचारा बेहोश पड़ा था। जहाँगीर भी स्वयं आँखें बन्द किए पड़ा पड़ा सुरा, सुन्दरी तथा संगीत के स्वप्नलोक में विचर रहा था। किन्तु जब एक झोंका आया और जब तूफ़ान का अन्त

होने लगा तब जहाँगीर ने आँखें कुछ खोलीं, देखा कि उसको लिये नूरजहाँ रावलपिण्डी के पास भागी चली जा रही थी, खुर्रम और महाबत खाँ झेलम के इस पार डेरा डाले पड़े थे। जहाँगीर ने स्वयं को संसार का रक्षक घोषित किया था, किन्तु उसकी भी रक्षा के लिए जहान के नूर की आवश्यकता पड़ी। नूरजहाँ ने देखा कि यदि वह अपने प्रेमपात्र की रक्षा न करेगी तो उसकी सत्ता, उसका वह गौरव और शासन, सब कुछ नष्ट हो जावेगा। जहाँगीर को अपने हृदय-प्रदेश के अन्तरतम निभृत कक्ष में छिपाए रखना, तथा उसके हृदय को उसके प्रेम को वहाँ वन्दी रखना भी नूरजहाँ को पर्याप्त प्रतीत न हुआ; उसे अंचल में समेटे हृदय से चिपटाए लिए जाना ही उसे अत्यावश्यक जान पड़ा।

× × ×

अकबर के शासनकाल में जो मादकता साम्राज्य पर छा रही थी, उसी के फलस्वरूप जहाँगीर के समय में आई यह अन्धकारपूर्ण आँधी। अन्धकार के उस काले वातावरण में वासनाओं के उस घनघोर तम से पूर्ण संसार में प्रेममदिरा तथा प्रेमविद्रोह का साथ ही भीषण प्रवाह आया, भयंकर आग लगी। उस दावानल में सब कुछ स्वाहा हो गया और उनके उन भस्मावशेषों में से निकला प्रेम-सलिल का पवित्र सोता—ताज। समुद्र-मन्थन के समय कालकूट विष के बाद श्वेत वस्त्र पहिने हाथ में अमृत का कमण्डल लिए ज्यों धन्वन्तरि निकले, त्यों ही साम्राज्य-स्थापना में मोह तथा उद्दाम वासनाओं के भीषण अन्धड़ के बाद निकला वह प्रेमामृत, वह धवल प्रेम-स्मारक, और उसे संसार को प्रदान किया उस श्वेत-वसन वाले वृद्ध शाहजहाँ ने। महादेव की तरह जहाँगीर भी उस कालकूट भीषण दावानल को पी गया, और जीवन-पर्यन्त उसके भयंकर प्रभाव से जलता रहा; और जब निकली शुद्ध प्रेम की वह ज्योति तो उसे अपने पुत्र शाहजहाँ तथा संसार के समस्त दर्शकों

के लिए छोड़ दिया। विषयवासना के इस हलाहल को पीकर जहाँगीर सचमुच संसार का रक्षक हुआ।

किन्तु विष तो विष ही था। बरसों अपने टूटे हुए हृदय को सँभालते-सँभालते जहाँगीर बेबस हो गया। उसका हृदय निरंतर चोटें खा-खा कर चकनाचूर हो चुका था। वह विष उसकी नस-नस में व्याप्त हो रहा था। अन्दर ही अन्दर आग सुलग रही थी, उसने जहाँगीर को खाक कर डाला। नूरजहाँ ने उसमें अन्तिम आहुति डाली; विषयवासना का वह दावानल पुनः भड़का, फिर आँधी चलने लगी; महावत खाँ और खुर्रम दक्षिण की ओर भागे। किन्तु उस झुलसे हुए खोखले शरीर में अब क्या शेष था? इस वार जो अग्नि भड़की तो जहाँगीर के इस पार्थिव शरीर को ही जलाने लगी। इस गरमी को न सह कर जहाँगीर शान्ति के लिए इस भौतिक जगत के स्वर्ग की ओर दौड़ा। चिरकाल से संतप्त करने वाली इस गरमी को दबाने के लिए वह हिमालय से लिपटने को बढ़ा। किन्तु इस वार नियति अधिक अनुकूल थी; एक ही लपट ने उसके नश्वर शरीर को खाक कर डाला।

× × ×

दावानल शान्त हो गया। ईंधन के अभाव से उसका अन्त हो गया। किन्तु जहाँगीर के उन भस्मावशेषों में से आज भी वह तप्त आह निकलती है कि उसको सहन करना कठिन हो जाता है। शाहजहाँ ने उस भस्म को पत्थरों के उस सुन्दर प्रासाद में रख कर पत्थरों से जड़ दिया; किन्तु आज भी उस स्थान पर वे तप्त आहें विद्यमान हैं। दिन प्रति दिन उन पत्थरों पर ताजे-ताजे सुगन्धित पुष्प चढ़ाए जाते हैं, किन्तु कुछ ही घंटों में वे भी उस गरमी से झुलस कर मुरझा जाते हैं। इस भौतिक जगत में विषयवासना की निरंतर उठने वाली लपटों को कितने सह सके हैं? कितने मनुष्य टूटे हुए हृदयों से निकली हुई आहों का सामना कर सके हैं? एक कोमल

कली का निकलना, उसका खिलना और खिलकर उसका फूलना, यत्र-तत्र डुलाया जाना, उन कँटीले काँटों में विंधना, उन काले-कलूटे भ्रमरों द्वारा रौंदा जाना, और तब ......मुरझा जाना, सूख जाना, टूट पड़ना, और मिट्टी में मिल कर विनष्ट हो जाना। अनेकों कलियाँ खिलती हैं, कई फूल कुचले जाते हैं, परन्तु तप्त लपटों को कौन सह सकता है ? खिलती हुई गुलाब की कली भले ही उस टूटे हुए हृदय के रक्त को अपनाकर उस रक्तवर्ण से अपने अंचल को रँग ले, परन्तु फिर भी उस टूटे हुए हृदय की आह का सामना करना, उस तपतपाती हुई निश्वास को सहना.......उन कुचले हुए फूलों और तड़पती हुई कलियों तक के लिए यह असम्भव है।

आज भी उन पत्थरों पर, जहाँगीर के तड़पते हुए हृदय पर रखे गए पत्थरों पर, एक दिया टिमटिमाता है। दीपक की वह लौ झिलमिला कर रह जाती है। उस मिट्टी के दिये में भरे हुए उस स्नेह को, उस स्नेह से सिक्त उस उज्ज्वल वत्ती को, वासना की वह प्रदीप्त लौ तिल-तिल कर जलाती है। दूर-दूर देशों से अगणित पतंगे उस दिये पर खिंचे चले आते हैं, जल कर भस्म हो जाते हैं, और उनकी भस्म को रमाए वह वत्ती जलती ही जाती है, और मस्तक रूपी उस लौ को धुन-धुन कर वह पतंगे के उस जीवन की सराहना करती है जो एकबारगी जल कर भस्म हो जाता है। उस जलते हुए चिराग़ से अधिक द्योतक और कौन सी वस्तु उस समाधि पर रखी जा सकती है ?

× × ×

उन्मत्त आँधी की नाईं नूरजहाँ ने भारतीय रंगमंच पर प्रवेश किया था, किन्तु अब उतरते हुए ज्वार की तरह वह वहाँ से अनजाने लौट गई। जहाँगीर की मृत्यु हुई और उसके साथ ही नूरजहाँ के सार्वजनिक जीवन ने विदा ली, उसकी महती सत्ता भी अनजाने

लुप्त हो गई; रूप-वासना तथा राजमद की वह मादकता कपूर की नाईं उड़ गई।

नूरजहाँ ने देखा कि राष्ट्र-सागर की तरंगें धीरे-धीरे शान्त हो रही थीं, भारतीय आकाश साफ़ हो रहा था। क्रूर काल द्वारा अपनी प्रेम-मूर्ति को अपनी सत्ता के द्योतक को नष्ट होते देख कर भी नूरजहाँ स्तब्ध थी। एक ही हाथ में नियति ने उसका सब कुछ साफ़ कर डाला। अपना सर्वस्व लुटते देखा, किन्तु उसकी आँखों में आँसू न थे, मुख में आर्तनाद न था। वह खड़ी चुपचाप देख रही थी और उसी के सामने उसका सर्वस्व लुट रहा था; नियति की कठोर थप्पड़ें खाने की उसे लत पड़ गई थी। जन्म से ही उत्थान, पतन तथा भाग्य के उलट-फेरों का सामना करना उसकी प्रकृति का एक अविभाज्य अंग हो गया था।

क्षमता की मदिरा पीकर नूरजहाँ उन्मत्त हो गई थी। उसका नशा अब उतर रहा था, किन्तु खुमारी अब भी शेष थी। पुरानी स्मृतियाँ, पुराने संस्कार, उन शक्तिशाली दिनों की वह सुध भी उसे सताती थी। मंत्र-मुग्ध की नाईं अपनी पुरानी आदत के ही परिणाम-स्वरूप नूरजहाँ एक बार पुनः उठी और चाहा कि शासन और सत्ता की बागडोर एक बार फिर सँभाले, पुनः शासन के बिखरे बन्धनों को जकड़े तथा अपनी शक्ति को संगृहीत करे, किन्तु कहाँ था उसका वह पुराना उत्साह, उसकी वे पुरानी आकांक्षाएँ ? . . . . . . उसके जीवन पर निराशा का तमपूर्ण कुहरा छा रहा था। उसकी आशाओं का सूर्य अस्त हो चुका था। शाहजहाँ के भीषण झोंकों को न सह कर नूरजहाँ गिर पड़ी। अर्जुन की ही तरह उसने भी पुराने संस्मरणों के आधार पर पुनः उठने का, एक बार फिर अपनी सत्ता प्रदर्शित करने का प्रयास किया, किन्तु उसकी सत्ता का वह स्थायी आधार कहाँ था ? उसके जीवनरथ का वह सारथी ही अब नहीं रहा जो उसे सफलता के मार्ग पर ले जा सके।

नूरजहाँ इस लोक में आई थी या तो शासन करने या विस्मृति के गम्भीर गह्वर में स्वयं को विलुप्त करने। वह संसार के साथ खिलवाड़ करने आई थी, स्वयं संसार के खिलवाड़ की वस्तु न थी। मानवीय भावों के सागर में निरन्तर उठने वाली तरंगों को रौंद कर उन पर शासन करना, या उन तरंगों को चीर कर उस अथाह सागर में सर्वदा के लिए डूब जाना ही उसका उद्‌देश्य था। उन निर्बल तरंगों द्वारा इधर-उधर पटकी जाना उसे अभीष्ट न था; उसके साथ वे तरंगे मनचाहा खिलवाड़ करें यह एक असम्भव बात थी।

अपने प्रियतम की मृत्यु के बाद ही नूरजहाँ ने अपने सांसारिक जीवन से बिदा ले ली। अपने पद से पतित भग्न सुन्दर मूर्ति के समान ही नूरजहाँ भारतीय रंगमंच पर अस्त-व्यस्त पड़ी थी; किन्तु ......नहीं......संसार अधिक काल तक यह दृश्य नहीं देख सका, उस पर विस्मृति की यवनिका गिर रही थी। संसार ने उसे भुला दिया; 'नूरजहाँ के अन्तिम दिनों की मनुष्य को कोई भी चिन्ता न रही।

उँचाई से खड्ड में गिरने वाले जलप्रपात को देखने के लिए सैकड़ों कोसों की दूरी से मनुष्य चले आते हैं। वहाँ न जाने कहाँ से जल आता है और न जाने कहाँ चला जाता है। उस गिरती हुई धारा में, उस पतनोन्मुख प्रवाह में कौन सा आकर्षण है? उन उठे हुए कगारों पर टकरा कर उस जलधारा का छितरा जाना, खण्ड-खण्ड होकर फुहारों के स्वरूप में यत्र-तत्र बिखर जाना, हवा में मिल जाना—बस, इसी दृश्य को देखने में मनुष्य को आनन्द आता है। कहाँ से यह जल आता है, प्रपात के समय उसकी क्या दशा होती है, कितनी बेदर्दी के साथ वह धारा छिन्न-भिन्न होती है, और आगे उस कठोर पृथ्वीतल पर गिर कर उस जल की क्या दशा होती है, इसका विवरण कौन पूछता है? प्रपात तथा उसके फलस्वरूप छितराए हुए उन फुहारों से ही मनुष्य की तृप्ति हो जाती है।

नूरजहाँ ने जीवित मृत्यु का आलिंगन किया। उसने हँसी को छोड़ कर हाहाकार को अपनाया; प्रकाश को त्याग कर अन्धकार की शरण ली; विलास को ठुकरा कर तप करना प्रारम्भ किया; रंगविरंगे वस्त्रों को छोड़ कर श्वेत वसन पहिन लिए। विनाश का, आगामी मृत्यु का वह करुण निनाद सुन कर भी अब नूरजहाँ का दिल नहीं दहलता था। मृत्यु की उस अज्ञात अस्पष्ट पदध्वनि को सुनने ही में उसे आनन्द आता था। उसने अपनी मृत्यु को अपने सम्मुख नाचते देखा। ध्वंस के भयंकर स्वरूप को देख कर भी वह अविचलित रही, और जब अज्ञात लोक से किसी ने उसका मूक आह्वान किया तब भी वह अपनी चिरपरिचित शान्त मन्थर गति से ही निधड़क चली गई। इस लोक को छोड़ कर उसने दूसरे लोक में अज्ञात-रूपेण पदार्पण किया। जहान का नूर लुट गया और संसार को पता भी न लगा। आज भी उस श्वेत समाधि के भीतरी भाग में उसकी क़ब्र पर पड़े मुरझाए हुए सुन्दर फूलों की सुगन्ध नूरजहाँ के अन्तिम दिनों की याद दिलाते हैं।

× × ×

एक ही नगर में स्थित हैं उन तीन भग्न हृदयों की क़ब्रें; तीन भिन्न-भिन्न स्थानों में रहने वाले दैव-संयोग से एकत्रित हुए थे, किन्तु जिस नियति ने उन्हें इकट्ठा किया था, उसी ने उन्हें अलग अलग कर दिया। एक ही शहर में तीनों की क़ब्रें विद्यमान हैं, किन्तु फिर भी वे दूर दूर पड़े हैं। अपने अपने हृदय का भार उठाए, अपनी अपनी अतृप्त वासनाओं की अग्नि को अपने दिल में छिपाए, अपने अपने भग्न हृदय के टुकड़ों को समेटे तीनों शताब्दियों से अपने अपने स्थान पर पड़े हैं।

इस लोक में आकर कौन अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण कर सका है? किसने चिर संयोग का सुख पाया है? कुछ ही घड़ियों का, कुछ ही दिनों का, कुछ ही वर्षों या युगों का संयोग...और बस

यहीं संसार की जीवन-कहानी, सुखवार्ता समाप्त हो जाती है। वियोग, वियोग, चिर वियोग और उस पर बहाए गए आँसू, बस ये ही शेष रह जाते हैं। और तब !...धू-धू कर के भावों का बवण्डर उठता है, हृदय जल उठता है, आँसुओं का प्रवाह उमड़ पड़ता है, तपतपाई हुई उसासें निकली पड़ती हैं,...और अन्त में रह जाती है स्मृतिरूपी दीपक की वह श्यामल धूम-रेखा, जो जल जल कर तमसावृत-पटल को अधिकाधिक अंधकार पूर्ण बनाती है, और वे आँसू, जिन्हें उस निराशामय शान्त निस्तब्ध वातावरण में कोई अन-जाने टपका देता है।

और उन तीन क़ब्रों पर आज भी आँसू ढलकते हैं। रात्रि के समय आज भी जब सर सर करती हुई सिहराने वाली ठंडी हवा चलती है, जब उन विगत-राज्यश्री वाली क़ब्रों पर छोटे छोटे मिट्टी के दिये टिमटिमाते हैं, और जब उनकी छोटी सी उज्ज्वल लौ झिलमिला कर रह जाती है, तब काली चादर ओढ़े उस असीम अन्धकार में से न जाने कौन आता है, रात भर उन क़ब्रों पर रोता है और अरुणोदय से पहिले ही अपनी चादर समेटे चुपचाप चला जाता है। और प्रभात के समय पूर्व की ओर जब, रात भर रोते रोते लाल हुई एक आँख देख पड़ती है, तब उन क़ब्रों पर दिखाई देते हैं यत्र-तत्र ढलके हुए अश्रुकण। ये ही अश्रुकण आज भी उन तड़पते हुए, प्रेम के प्यासे मनुष्यों के धधकते हुए, भग्न हृदयों की अग्नि को शान्त बनाए रखते हैं।

उजड़ा स्वर्ग

उजड़ा स्वर्ग

[१]

और वे भी दिन थे, जब पत्थरों तक में यौवन फूट निकला था, उनके मदमाते यौवन की रेखाएँ उभरी पड़ती थीं, उन्हें भी जब शृंगार की सूझी थी, जब बहुमूल्य रंगबिरंगे सुन्दर रत्न भी उनकी बाँकी अदा पर मुग्ध होकर उन कठोर निर्जीव पत्थरों से चिपटने को दौड़ पड़े, उनका चिर सहवास प्राप्त करने को वे लालायित हो रहे थे, और चाँदी-सोने ने भी जब उनसे लिपट कर गौरव का अनुभव किया था। वे पत्थर अपनी उठती हुई जवानी में ही मतवाले हो रहे थे, सुन्दरता छलकी पड़ती थी, कोमलता को भी उनमें अपना पूर्ण प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता था, और तब, उन श्वेत पत्थरों में भी वासना और आकांक्षाओं की रंगबिरंगी भावनाएँ झलकती थीं। उन यौवनपूर्ण सुन्दर सुडौल पत्थरों के वे आभूषण, वे सुन्दर पुष्प . . . सच्चे सुकोमल सुगंधित पुष्प भी उनसे चिपट कर भूल गए अपना अस्तित्व; उनके प्रेम में पत्थर हो गए, उन पत्थरों में भी सजीवता का अनुभव कर वे चित्रलिखित से रह गए। और उन मदमाते पत्थरों ने अपने प्रेमियों को, अपने गले के उन हारों को, अमरत्व प्रदान किया।

ये पत्थर, उस पार्थिव स्वर्ग के पत्थर थे, भारत-सम्राट् ही नहीं, किन्तु भारतीय साम्राज्य, समाज तथा भारतीय कला भी जिस स्वर्ग में बेहोश विचरते थे। उन पत्थरों की सजीवता पर, उनकी मस्ती पर, उनके निरालेपन पर, उनकी बाँकी अदा पर, उनके उभरते हुए यौवन के आकर्षण से, संसार मुग्ध था, उनके पैरों में लोटता था,

उनको जी भर देख लेने को पागल की नाईं आँख फाड़ फाड़ कर देखता था, उनकी मस्ती के सहस्रांश को भी पाने के लिए बालक की तरह मचलता था, रोता था, बिलखता था...परन्तु वे पत्थर पत्थर ही तो थे, फिर उन पर यौवन का उन्माद,...अपनी शान में ही ऐंठे जाते थे वे, अपने मतवालेपन में ही झूमते थे, अपने अमरत्व का अनुभव कर इतराते थे। गले से लगे हुए अपने प्रेमी पुष्पों की ओर एक नज़र डालने को भी जो ज़रा न झुके,...संसार, दुःखपूर्ण मृत्युमय संसार की भला वे क्यों परवाह करने लगे ?

पत्थर, पत्थर...अरे ! उस भौतिक स्वर्ग के पत्थरों तक में यौवन छलक रहा था, उन तक में इतनी मस्ती थी, तब वह स्वर्ग ...और उसके वे निवासी,...उनको भी मस्त कर देने वाली, उन्मत्त बना देने वाली मदिरा...आठों पहर मस्ती में झूमने वाले स्वर्ग-निवासियों के उन स्वर्गीय शासकों को भी मदोन्मत्त कर सकने वाली मदिरा,...उसका ख़याल मात्र ही मस्त कर देने वाला है, तब उसकी एक घूँट, एक मदभरा प्याला,....।

प्याला, प्याला, वह मदभरा प्याला, उस स्वर्ग में छलक रहा था, उसकी लाली में पत्थर तक सिर से पाँव तक रँग रहे थे, संसार खड़ा देखता था, तरसता था...; परन्तु एक दिन उस स्वर्ग का निर्माता तक इसी मस्ती की ओर प्यासी दृष्टि से देखता था, उसका आह्वान करने को आँखें बिछा रहा था, स्वर्गीय उन्माद की उस मदमाती मदिरा की थोड़ी सी भी उन उन्मत्तकारी बूँदों को बटोरने के लिए नयनों के दो दो प्याले सरका कर एकटक ताकता था। तब...जहान का शाह मादकता की भीख माँगने निकला था। उसके प्रेम पर पत्थर पड़ चुके थे, उसका दिल मिट्टी में मिल चुका था, उसकी प्रियतमा का वह अस्थिपंजर सुन्दर अद्वितीय ताज पहने बीभत्स अट्टहास करता था। प्रेम-मदिरा ढुलक चुकी थी और शाह-जहाँ रिक्त नेत्रों से संसार को देख रहा था। प्रेम-प्रतिमा भग्न हो

गई थी, हृदयासन खाली पड़ा था, और....पावों तले भारतीय साम्राज्य फैला हुआ था, कोहनूर-जड़ित ताज पैरों में पड़ा सिर पर रखे जाने की बाट देख रहा था, राज्यश्री उसके सम्मुख नृत्य कर रही थी, अपनी भावभंगि द्वारा उसे ही नहीं संसार को भी लुभाने का भरसक प्रयत्न कर रही थी, तथा उनके हृदयों को अपने अंचल में समेटने के लिए अनन्त सौन्दर्य बिखेर रही थी।

मदिरा ! मदिरा ! वह मस्ती ! मादकता का वह नर्तन ! ....एक बार मुंह से लगी नहीं छूटती। एक बार स्वप्न देखने की, सुख-स्वप्न-लोक में विचरने की लत पड़ने पर उसके बिना जीवन नीरस हो जाता है। प्रेम-मदिरा को मिट्टी में मिला कर शाहजहाँ पुन: मस्ती लाने को लालायित हो रहा था; अपने जीवन-सर्वस्व को खोकर जीवन का कोई दूसरा आसरा ढूंढ़ रहा था।... सुन्दर सुकोमल अनारकली को कुचल देने वाली कठोर-हृदया राज्यश्री शाहजहाँ की सहायक हुई। शाहजहाँ की प्यासी चितवन को बुझाने के लिए राज्यश्री ने राजमदिरा ढाली। दो-दो प्यालों में एकबारगी सुख-स्वप्न-लोक की इस मस्ती को पाकर शाहजहाँ बेहोश हो गया। राज्यश्री ने सम्राट् को प्रेमलोक से भुलावा देकर संसार के स्वर्ग की ओर आकृष्ट किया, और शाहजहाँ मंत्र-मुग्ध की तरह उस स्वर्ग की ओर बढ़ा। वह प्रेमी अपनी प्रेमिका को गँवा कर स्वयं को खो चुका था, अब इस स्वर्ग में पहुँच कर वह अपने उस प्रेमलोक को भी खो बैठा।

इस पृथ्वी-लोक में स्वर्ग, इस ज़मीन पर बहिश्त...उस भावी जीवन में स्वर्ग पाने की आशा ही अनेकानेक व्यक्तियों को पागल कर देती है, तब इस जगत में, भौतिक संसार में, स्वर्ग को पाकर, उसे प्रत्यक्ष देख कर उसमें विचरना...। स्वर्ग के स्वप्न देख कर ही कौन भौतिक जीवन को नहीं भूला है, तब भौतिक स्वर्ग का निवास, उसके वे सारे सुख, उस जीवन की वह मस्ती...सदेह उस स्वर्ग

में पहुँच कर अपना अस्तित्व भुला देना, अपना व्यक्तित्व खो बैठना कोई अनहोनी बात नहीं है। और इन सब से अधिक नवीन प्रेयसी का प्रेम, प्रौढ़त्व में पुनः प्रेम का उद्भव, उसका प्रस्फुटन और विकास ...एक ही बात मनुष्य को उन्मत्त बना देने के लिए पर्याप्त होती है, तब इतनों का सम्मिश्रण...बहुत थी वह मस्ती...।

× × ×

मुग़ल साम्राज्य ने भी प्रौढ़त्व को प्राप्त कर अँगड़ाई ली। अपने रक्षक का तिरस्कार कर जहान ने अपने शाह को अपनाया, उसकी पूजा, उसके चरणों में प्रेमाञ्जलि अर्पण की और उस शाह ने अपने जहान की ओर दृष्टि डाली। उसके उस साम्राज्य के यौवन का उन्माद भी अब कुछ घटने लगा था; नूरजहाँ भारतीय रंगमंच से बिदा ले चुकी थी। अपनी अन्तिम प्रेयसी मुमताज को खोकर साम्राज्य नें उसकी आख़री अदा ताज की अमर सुन्दरता में देखी; परन्तु अब भी नित-नई की चाह घटी न थी। बढ़ते हुए साम्राज्य को प्रौढ़त्व में भी नवीन प्रेयसी की इच्छा हुई; आगरा की संकुचित गलियाँ साम्राज्य के धुकधुकाते हुए जीवनपूर्ण हृदय को समाविष्ट करने के लिए पर्याप्त प्रतीत न हुईं। साम्राज्य का प्रेमसागर शान्त हो गया था, किन्तु अब भी अथाह महोदधि उस वक्षःस्थल में हिलोरें ले रहा था। प्रशान्त महासागर में तरङ्गें यदा-कदा ही उठती हैं, परन्तु उस चाँद से मुखड़े को देख कर वह भी खिंच जाता है, अनजाने उमड़ पड़ता है,......उस चाँद का वह आकर्षण...वह साधारण सागर भी उसके प्रभाव से नहीं बच सकता है, तब उस प्रेमसागर का न खिंचना...संसार में बिरले ही उस आकर्षण का सफलतापूर्वक सामना कर सके हैं।

साम्राज्य नवीन प्रेयसी के लिए लालायित हो उठा। सम्राट् विधुर हो ही गया था, साम्राज्य नें अपनी प्रथम प्रेयसी आगरा नगरी को अपने हृदय से निकाल बाहर किया; और उन दोनों को रिझाने

के लिए राज्यश्री ने नववधू की योजना की । अनन्तयौवना ने बहु-भर्तृका को चुना । इस पांचाली ने भी सम्राट् और साम्राज्य दोनों को साथ ही पति के स्वरूप में स्वीकार किया । और...इस पांचाली के लिए भी उसी कुरुक्षेत्र में पुनः महाभारत हुआ, इसके पति को भी बारह वर्ष का वनवास हुआ, उसे देश-देश घूमना पड़ा; और इसके पुत्र...नहीं ! नहीं ! यह पहिले भी नहीं हुआ, आगे भी न होगा, पांचाली के भाग्य में पुत्र-पौत्र का सुख न लिखा था, न लिखा है ।

न जाने कितने साम्राज्यों की प्रेयसी, उजाड़ विधवा नगरी पुनः सधवा हुई । अपनी माँग में फिर सिन्दूर भरने के लिए उसने राज्यश्री से सौदा किया, अपने प्रेमी के स्थायित्व को देकर उसने अनन्त यौवन प्राप्त किया । और अब नवीन आशाओं के उस सुन-हले वातावरण में दिल्ली का चिर यौवन प्रस्फुटित हुआ । दिल्ली ने पुनः रंग बदला, नया चोला धारण किया, वैधव्य के उन फटे चिथड़ों को दूर फेंक कर उसने उन्मत्त कर देने वाली लाली में स्वयं को रँगा और नव-वधू का सा नया शृंगार किया । और तब...अपने वक्षःस्थल में अपने नये प्रेमी को स्थान देने के लिए उसने एक नवीन हृदय की रचना की । उस महान प्रेमी के लिए, अपने नवीन प्रीतम के हेतु दिल्ली ने इस भूलोक पर स्वर्ग को अवतरित किया । भारत सम्राट् के लिए, दिल्लीश्वर के सुखार्थ इस संसार में स्वर्ग भी आ पहुँचा । उस वारांगना दिल्ली ने इस भौतिक लोक में स्वर्ग निर्माण किया और इस बार उस सामान्या ने जहान के शाह को उस स्वर्ग-रूपी हृदय का अधिष्ठाता बनाया । यों जगदीश्वर के समान ही दिल्लीश्वर ने भी स्वर्ग में निवास किया, तथा उस भौतिक पुंश्चली दिल्ली ने स्वर्गीय इन्द्राणी से भी बाज़ी मार ली ।

× × ×

नव-वधू ने अपने प्रियतम का स्वागत किया । उस प्यार ने

आते हुए शाहजहाँ ने यमुना में उस नये स्वर्ग का प्रतिविम्ब देखा——वह लाल दीवार और उस पर वे श्वेत स्फटिक महल, उस लाल लाल सेज पर लेटी हुई वह श्वेतांगी—अपने प्रियतम को आते देख सकुचा गई, नव-वधू के उजले मुख पर लाली दौड़ गई और उसने लज्जावश अपना मुख अपने अंचल में छिपा लिया, दोनों हाथों से उसे ढक दिया।

और यमुना के प्रवाह में वायु के किंचिन्मात्र झोंके से ही उद्वेलित हो जाने वाली उस धारा पर, निरन्तर उठने वाली उन तरंगों पर, शाहजहाँ ने देखा कि वे स्वर्गीय अप्सराएँ, उस दूसरे लोक की वे सुन्दरियाँ, अपनी अद्‌भुत छटा को रंगविरंगे वस्त्रों में समेटे, उन झीने वस्त्रों में से देख पड़ने वाले उन श्वेतांगों की उस अद्‌भुत कान्ति से सुशोभित, अपने उजले उजले पैरों पर महावर लगाए, उसके स्वागत के उपलक्ष में नृत्य कर रही हैं। भूलोक पर अवतरित स्वर्ग के अधिपति के आने के समय उस दिन उस महानदी पर अपने सौन्दर्य, द्युति तथा अपनी कला का प्रदर्शन करके, जहान के शाह का उस स्वर्ग-लोक में, नवीन प्रेयसी के उस स्वर्गीय हृदय-मन्दिर में, स्वागत करने आई हैं। और उस महानदी का वह कृष्णवर्ण जल उनकी कान्ति से उज्ज्वलित होकर, उनके तलुओं में लगी महावर की लाली को प्रतिविम्बित करके हर्ष के मारे कल्लोल कर रहा था। एकवारगी यमुना त्रिकाल-सम्बन्धी दृश्यों की त्रिवेणी वन गई, उत्थान की लाली, प्रताप का उजेला तथा अवसान की कालिमा, तीनों का सम्मिलित प्रतिविम्ब उस महानदी में देख पड़ता था। परन्तु अवसान की वह कालिमा तब कहाँ गई? लाली और उज्ज्वल प्रकाश ने उसे छिपा दिया; किसी को तब ख़याल भी न आया कि विगत रात्रि की क्षीण होने वाली कालिमा आगामी रात्रि के स्वरूप में पुनः उपस्थित होकर एकछत्र शासन करती है; और तब...वह जीवन-प्रवाह उस स्वर्ग से वहुत दूर जा पहुँचेगा, अपनी दूसरी ही धारा में वहेगा।

स्वर्ग के सुख को देख कर उस समय उसके इस दुःखद अन्त का ख़याल किसी को क्यों होता ? अनन्तयौवना विषकन्या भी होती है; चाँद का जो कलंक एक समय उसका आभूषण बना रहता है वही कलंक बढ़ते बढ़ते पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र को अमावस्या की कालिमा में रँग देता है। प्रेमप्रणय की उस मस्ती के उमड़ते हुए प्रवाह में ये सब ख़याल डूब गए। वह उल्लास का दिन था, प्रथम मिलन की रात्रि थी, सुख छलका पड़ता था, सौन्दर्य उल्लास के प्रवाह में घुल-घुल कर अधिकाधिक निखरता जाता था। मदिरा-सागर में ज्वार आया था, उस दिन तो उसकी वे लाल लाल उमड़ती हुई तरंगें और उन पर चमकते हुए वे श्वेत फेन...उन्होंने सारे स्वर्ग को रँग दिया; और मादकता के सागर की वह तलछट, वह कृष्णवर्णा यमुना, वह तो उस स्वर्ग के तले ही पड़ी रही,...और उस तलछट में भी लाली की झलक देख पड़ती थी, आभा की द्युति उसमें भी विद्यमान थी।

प्रथम-मिलन का उत्सव था; अनन्तयौवना की लाड़ली की सोहागरात थी। जहान का शाह उसके हृदय में वास करने आया था, और अपने प्यारे का स्वागत करने में पांचाली का हृदय, वह स्वर्ग, फूला समाता न था। उस स्वर्ग का अन्तरंग,...उसकी सुन्दरता का वर्णन करना असम्भव है। अनन्तयौवना की लाड़ली, सिद्धहस्त वारांगना का शृंगार...उसमें सुन्दरता थी, मादकता थी, आकर्षण था, परन्तु उमड़ते हुए नवयौवन का उभार उसमें न था; निरन्तर अधिकाधिक ऊँची उठने वाली तरंगों की तरह वह वक्षःस्थल उठा हुआ न था। वह प्रौढ़ प्रेमियों का प्रणय था। सौन्दर्य तथा मादकता का इतना गहरा रंग चढ़ा था कि उसमें कोई दूसरी विभिन्नता नहीं देख पड़ती थी। स्वर्ग में और उतार-चढ़ाव ...जहाँ समानता हो वहीं निरन्तर सुख, चिरस्थायी आनन्द, अक्षय विलास घर कर सकते हैं। स्थिरता, समानता और प्रशान्त गम्भीरता ही स्वर्ग की विशेषताएँ होती हैं। स्वर्ग का सुख प्रौढ़

व्यक्तियों के भावों की तरह समान, प्रशान्त महासागर के वक्षःस्थल का सा समतल, और उसी के समान गम्भीर और अगाध भी होता है। यदा-कदा उठने वाली छोटी छोटी तरंगें ही उसके वक्षःस्थल पर यत्किंचित् उभार पैदा करती हैं, उन्हीं से उसमें सौन्दर्य आता है, और उन्हीं नन्हीं तरंगों पर नृत्य करती है वह यौवन-सुन्दरी। यौवन-मदिरा से रँगे हुए उस प्रेम-महोदधि में उठी हुई, घनीभूत भावों की लाल लाल तरंगों पर ही स्थिर हैं वे श्वेत प्रासाद, स्वर्ग-लोक के वे सुन्दर भवन, स्वप्न-संसार की वे स्फटिक वस्तुएँ, भाव-लोक की घनीभूत भावनाओं के वे भौतिक स्वरूप।

वासना के प्रवाह से ही उड़ती हैं वे छोटी छोटी आनन्दप्रदायक शुद्ध बूँदें, उस कालकूट विष में से निकलने वाले रसामृत की वे रसभरी बूँदें, जो अपनी सुन्दरता तथा माधुर्य से उस प्रवाह की कलुपितता को धो देती हैं, उसकी कालिमा को भी अधिकाधिक सौन्दर्य प्रदान करती हैं, और अपने माधुर्य से उस मदमाती लाल लाल मदिरा तक में मधुरता भर देती हैं। अवश्यम्भावी अन्त में पाई जाने वाली अमरत्व की भावना ही मनुष्य के जीवन को सौन्दर्य तथा माधुर्य से पूर्ण बनाती है। यह भौतिक स्वर्ग या उस पार का वह बहिश्त, एक ही भावना, एक ही विचार-प्रवाह, चिर सुख की इच्छा ही उनमें पाई जाती है। और सुख, सुख...मनुष्य उसके लिए कहाँ कहाँ नहीं भटकता है, क्या क्या नहीं खोजता है, कौन कौन सी कठिनाइयाँ नहीं झेलता है, क्या उठा रखता है? और स्वर्ग-सुख, सुख-इच्छा का भावनापूर्ण पुंज, वह तो मनुष्य की कठिनाइयों को, सुख तक पहुँचने के लिए उठाए गए कष्टों को देख कर हँस देता है, और मनुष्य उसी कुटिल हँसी से ही मुग्ध होकर स्वर्ग-प्राप्ति का अनुभव करता है।

स्वर्ग का वह ईषत् हास्य, उसकी वह रहस्यमयी मुसकान... उफ़! उसने एक स्वरूप धारण करने में, एक सुचारु दृश्य दिखाने

के लिए कितनों का संहार किया ? इस भौतिक जगत का वह स्वर्ग ! वहाँ जहान का नूर बिखरा पड़ा था, स्वर्ण रत्नों से भूषित ताज मिट्टी में पड़ी हुई मुमताज़ के अस्थिपंजर को प्रकाशपूर्ण बना रहा था, सहस्त्रों सीपियों के दिलों को चीर कर निकाले गए मोती यत्र-तत्र चमक रहे थे, उस दूसरे लोक की सुन्दरियाँ इस लोक को आलोकित करने को दौड़ पड़ी थीं, हज़ारों पुष्पों का दिल निचोड़ कर उसमें सुगन्धि बिखेरी गई थी, सहस्त्रों स्नेहपूर्ण वत्तियाँ जल-जल कर उस स्वर्ग को उज्ज्वलित कर रही थीं; वहाँ जहान का शाह बेहोश मदमस्त पड़ा लोटता था, सुखनींद सोता था, स्वप्न देखते देखते अनजाने कहने लगता था—"पृथ्वी पर यदि स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है"।

× × ×

[२]

और उस स्वर्ग में जाने को राह थी, उसके भी दरवाज़े थे, और उस राह को सुमधुर ध्वनिपूर्ण चिर संगीत द्वारा गुंजित करके, न जाने कितनों को वह स्वर्ग अनजाने अपने अन्तरिक्ष में भटका कर ले जाता था। उस स्वर्ग की वह राह ! विलासिता बिखरी थी उस राह में, मादकता की लाली वहाँ सर्वत्र फैली हुई थी, और चिर संगीत दुःख की भावना तक को धक्के देता था। दुःख, दुःख...को तो नौबत के डंके की चोट, मुर्दे की खाल की ध्वनि ही निकाल बाहर करने को पर्याप्त थी। बाँस की वे बाँसुरियाँ —अपना दिल तोड़ तोड़ कर, अपने वक्षःस्थल को छिदवा कर भी सुख का अनुभव करती थीं। उन मदमस्त मतवालों के अधरों का चुम्बन करने को लालायित बाँस के उन टुकड़ों की आहों में भी सुमधुर सुख-संगीत ही निकलता था। मुर्दे भी उस स्वर्ग में पहुँच कर भूल गए अपनी मृत्यु-पीड़ा; उल्लास के मारे फूल कर ढोल हो गए,

और उनके भी रोम रोम से एक ही आवाज़ आती थी—"यहीं है ! यहीं है ! यहीं है !"

यमुना ने अपना दिल चीर कर इस स्वर्ग को सींचा; उस कृष्ण-वर्णा ने अपने हार्दिक भावों तथा शुद्ध प्रेम का मीठा चमचमाता जीवन उस स्वर्ग में वहाया। उस भौतिक स्वर्ग की वह आकाश-गंगा, उस स्वर्ग को सींच कर उसे भी गौरव का अनुभव हुआ। उसका असीम प्रवाह उसका नित-नया जीवन उस स्वर्ग में सीमित होकर वहा; उस स्वर्ग के देवी-देवताओं के चरण छूकर वह भी पुराना हो जाता था। स्वर्ग में एक वार वीता हुआ जीवन क्योंकर लौट सकता था, ...स्वर्ग में पुरातनता...नहीं, नहीं, स्वर्ग में होती हुई वह गंगा पुनः लौटती थी इस भूतल पर और उस पवित्र पार्थिव गंगा को, दूसरे स्वर्ग से उतरी हुई उस भागीरथी को, इस भौतिक स्वर्ग का हाल सुनाने के लिए अत्यधिक वेग के साथ दौड़ पड़ती थी।

उस स्वर्गगंगा में, उस नहर-इ-वहिश्त में, खेल करती थीं उस स्वर्ग-लोक की अत्यनुपम सुन्दरियाँ। उन श्वेत पत्थरों पर अपनी सुगन्धि फैलाता हुआ वह जल अठखेलियाँ करता, कलकल ध्वनि में चिर संगीत सुनाता चला जाता था, और वे अप्सराएँ अपने श्वेतांगों पर रंगबिरंगे वस्त्र लपेटे, नूपुर पहने, अपने ही ध्यान में मस्त झुन-झुन की आवाज़ करती हुई, जल-क्रीड़ा करती थीं।...और जव वह हम्माम वसता था, स्वर्ग-निवासी जव उस स्वर्गगंगा में नहाने के लिए आते थे, और अनेकानेक प्रकार के स्नेह से पूर्ण चिराग़ उस हम्माम को उज्ज्वलित करते थे, रंगबिरंगे सुगन्धित जलों के फव्वारे जव छूटते थे, और उस मस्ताने सुगन्धिपूर्ण वातावरण में सुमधुर संगीत की ताल पर जब उस हम्माम में जल-क्रीड़ा होती थी, तव... वहाँ उस स्वर्ग में सौन्दर्य विखरा पड़ता था, सुख छलकता था, उल्लास की वाढ़ आ जाती थी, मस्ती का एकछत्र शासन होता था और मादकता का उलंग नर्तन..., नहीं, नहीं, स्वर्ग के उस अद्भुत

दृश्य का वर्णन करना, इस पार्थिव लोक के निवासियों को उस स्वर्गीय छटा की एक झलक भी दिखाना एक असम्भव बात है। स्वर्ग की वह मस्ती...उस हम्माम में, स्वर्ग के उस मादकतापूर्ण जीवन में, गोता लगा कर कौन मस्त नहीं हुआ ? उन श्वेत पत्थरों पर, उन सजीव मदमाते रंगबिरंगे फूलों से सुशोभित स्फटिक पत्थरों पर वह जल-क्रीड़ा, उन ठण्डे पत्थरों पर वह तपतपाया हुआ जीवन, उस सुगन्धित जीवन के वे रंगबिरंगे फव्वारे और उनको प्रकाशित करने वाले वे अनेकानेक स्वरूप वाले स्नेह-पात्र, उनमें सहर्ष सोल्लास जलती हुई वे सुकोमल श्वेत वत्तियाँ, उन दियों में दहकता हुआ वह स्नेह और उस हम्माम में स्वर्गीय मानवों की वह मस्ती ! उफ़, पत्थरों तक पर मस्ती छा जाती थी; वे भी मत्त, उत्तप्त हो जाते थे और उन पत्थरों तक से सुगन्धित जल के फव्वारे छूटने लगते थे; निर्जीव पत्थर भी सजीव होकर स्वर्ग के देवताओं के साथ होली खेलने का साहस कर बैठते थे। और जब वहाँ मदिरा ढलती थी, ...सुरा, सुन्दरी और संगीत के साथ ही साथ जब सौरभ, सौन्दर्य और स्वर्गीय सुख भी बिखर बिखर कर बहने जाते थे...तब बूढ़ों तक का गया बीता यौवन भुलावे में पड़कर लौट पड़ता था, अशक्तों की असमर्थता भी उन्हें छोड़ कर चल देती थी, और दुखियों का दुःख भी उसी जल में बह जाता था।...उफ़ ! बहुत देख चुका उस स्वर्ग का वह उन्मादक दृश्य...जिनके कर अबाध गति से सब दूर पहुँच जाते हैं, वह सूरज भी वहाँ के दृश्य देखने को तरसता था, और अनेकों बार प्रयत्न करने पर बरसों की ताक-झाँक के बाद ही कहीं उसकी कोई एकाध किरण उन बड़े बड़े रंगबिरंगे पर्दों से होती हुई वहाँ तक पहुँच पाती थी। परन्तु...वहाँ पहुँच कर कौन लौट सका है ? स्वर्ग नरक हो जाय...परन्तु स्वर्ग के वे निवासी, उसमें जा पहुँचने वाले व्यक्ति...इस लोक से उसे दूर रखने वाले वे रहस्यमय अंधकारपूर्ण पट...सूरज की किरणों तक

का लौटना, दिये को देख कर पतंगों का न मचलना . . . ये सब असम्भव बातें थीं।

स्वर्ग ! स्वर्ग ! हाँ स्वर्ग ही तो था; पशु-पक्षी भी अनजाने जो वहाँ पहुँच गए तो वे भी मस्ती में बुत हो गए और स्वर्ग में ही रम गए, वहाँ से लौट न सके। मयूर ! वे ही सुन्दर मयूर जो अपनी सुन्दरता का भार समेटे पीठ पर लादे फिरते हैं, काली घटा को देख कर उल्लास के मारे चीखते हैं, मचल पड़ते हैं, उन हरे हरे मैदानों पर स्वच्छन्द विचरते हैं, वहाँ मस्त होकर नाचते हैं, . . . हाँ ! वे ही मयूर उस स्वर्ग में जाकर भारतीय सम्राट् के सिंहासन का भार उठाने को तैयार हो गए और वह भी बरसों तक, शताब्दियों तक . . .। जहान के शाह को उन्होंने उठाया, आलमगीर के भार को उन्होंने सहा और जड़वत् खड़े रहे ! स्वर्ग के अनन्त संगीत ने उन्हें स्वर्ग के अधिष्ठाता की निरन्तर चर्या करने का पाठ पढ़ाया। परन्तु उस सुन्दर लोक में मस्ती के साथ ही साथ संगीत भी सुन कर उस काली घटा को देखने के लिए वे तरसने लगे; लाली देखते देखते हरियाली के लिए वे लालायित हो गए। . . . और जब भारत के कलेजे पर साँप लोट गया और उसके वक्षःस्थल को रौंद कर चल दिया, तब तो मयूर उस साँप को पकड़ने के लिए दौड़ पड़े; बरसों स्वर्ग में रह कर वे भूल गए कि वे कोई सिंहासन उठाए हैं . . . आक्रमणकारी के पीछे पीछे तख़्तताऊस उड़ा चला गया।

परन्तु उस हरियाली के लिए, पानी की उस बूँदा-बूँदी के लिए, पशु-पक्षी ही नहीं स्वर्ग के निवासी, उस लोक के देवता भी तरसते थे। सावन के अन्धे बनने को वे ललचते थे, बरसात की उस मदमस्त मादक ठण्डी ठण्डी सुगंधित हवा के साथ ही बूँदा-बूँदी में बैठ रहने को, अपनी उस मस्ती में प्रकृति-रूपी अपने प्रेयसी की उस हलकी थपकी की मार खाने के इच्छुक थे। राजमद की गरमी को शान्त कर देने वाली तथा साथ ही अधिकाधिक उन्मत्त बना देने वाली उस

बरसात का बारहों मास अनुभव करने के लिए वे उपाय सोचने लगे; ...तब उस स्वर्ग के देवताओं ने इन स्वर्ग के अधिष्ठाताओं को सन्तुष्ट करने की सोची। और जब इस स्वर्ग में अवतरित हुआ बारहमासी सावन और भादों,...बारहों मास मद झरने लगा, और साथ ही दिन रात वह उज्ज्वलित भी रहने लगा। तब भी... मदमस्त शासक अंधेरे में—उनके हृदयों में पहिले ही पर्याप्त अंधकार था; उन्होंने हज़ारों वत्तियों द्वारा सावन और भादों को उज्ज्वलित किया, और उन वत्तियों का प्रकाश स्वर्गीय जीवन के प्रवाह में होकर जाता था, उस मदभरे वातावरण में पहुँचते पहुँचते वह उज्ज्वल प्रकाश भी अनेकानेक रंगों में रँग जाता था। तिल तिल कर जलने वाली स्नेह-सिक्त वत्तियों के प्रकाश पर भी जब इतना गहरा रंग चढ़ जाता था, तब उस स्वर्ग के मदमाते देवता उस रंगावली को देख कर कितने उन्मत्त होते होंगे? एक इन्द्रधनुष ही संसार को आकर्षित कर लेता है, वहाँ तो हज़ारों इन्द्रधनुष बिखरे पड़े थे। मस्ती का प्रभाव,...उस स्वर्ग का निदान और उस पर निरन्तर झरने वाला मद,...और अनेकानेक उन्मादक रंगों की वह सुन्दर आवली ...सावन और भादों इस पार्थिव लोक में भी उन्मादक होते हैं,.. और उस स्वर्ग में तो मनुष्य की क्षुद्रता बताने वाला वह कठोर वज्र भी नहीं देख पड़ता था, और न वहाँ मनुष्यों को ज़रा सी मस्ती से उन्मत्त होने वाले उन दादुरों की टर्-टर् ही सुननी पड़ती थी; ... और वह नशा एक-दो मास ही नहीं, निरन्तर वर्षों तक, युगों तक...। स्वर्ग के वे उपभोक्ता, उस लोक के वे देवता, और उस स्वर्ग के सावन और भादों...उस स्वर्ग के सावन के अन्धे, उन्मत्त मदमस्त अन्धे, जिनका अन्तरंग भी मादक मद में से होकर गुजरने वाले प्रकाश से ही आलोकित होता था...वहाँ जाकर संसार तक उस अमिट लाली में रँग गए, तब मनुष्य...।

× × ×

[३]

परन्तु स्वर्ग ! स्वर्ग का सुख ! दुःख के विना सुख. . .नहीं हो सकती इसकी पूर्ण अनुभूति ! इस लोक में, पृथ्वी पर भी स्वर्ग से दूर नरक की भी सृष्टि हुई और तभी स्वर्ग का महत्त्व बढ़ा। नरक-निवासियों का करुण क्रन्दन सुन कर ही स्वर्गवासी अपने स्वर्गीय चिर संगीत की मधुरता को समझ सके। दुःख के विना सुख, समस्त व्यक्तियों की अनुभूति में समानता, . . .नहीं ! नहीं ! तब तो स्वर्ग नरक से भी अधिक दुःखपूर्ण हो जायगा। मानवीय आकांक्षाओं की पूर्ति महत्ता के बिना नहीं हो सकती। तद्देशीय व्यक्तियों में समानता होने पर भी स्वर्ग का महत्त्व तभी हो सकता है, जब उसके साथ ही नरक भी हो। स्वर्ग के निवासी उसको देखें तथा स्वर्ग की ओर नरकवासियों द्वारा डाली जाने वाली तरस-भरी दृष्टि की प्यास को समझ सकें।

उस दूसरी दुनियाँ के समान ही इस लोक में भी स्वर्ग के साथ ही नरक की भी—नहीं, नहीं, स्वर्ग से भी पहिले नरक की सृष्टि हुई थी। स्वर्ग को न अपना सकने वालों के, या स्वर्ग से निर्वासित ही नहीं इस भौतिक लोक में भी स्थान न पा सकने वाले व्यक्तियों के भाग्य में नरक-वास ही लिखा था। अपनी आशाओं, अपने दिल के अरमानों . . .नहीं, नहीं, भारत के भाग्य तथा उसके अनिश्चित भविष्य को भी अपने साथ लपेटे, हृदय में छिपाए, जहान के शाह का प्यारा, दारा तरस तरस कर मर रहा था और संसार ने उसे डबडबाई आँखों से देखा। संसार भर के आँसू भी दारा की भाग्यरेखा को मेट न सके। वह सुर्खरू होकर अपने वृद्ध विवश पिता के सम्मुख आया; और एक बार फिर संसार ने शाहजहाँ की बेबसी देखी; उस बार वह भाग्य के दरवाज़े पर सिर फोड़ कर रह गया, इस बार स्वर्ग के दरवाज़े पर रो रो कर भी उस स्वर्ग के अधिष्ठाता तक न पहुँच सका।

परन्तु रक्त की लाली को स्वर्ग की लाली न सह सकी, और दारा का कटा हुआ सिर नरक में भेज दिया गया। उस स्वर्ग का वह नरक, पतित आत्माओं का वह निवास, विफल व्यक्तियों का वह अन्तिम एकमात्र आश्रय, स्वर्ग से कोसों दूर, उस पुंश्चली दिल्ली से भी अपना दामन बचाए, उन बेचारों को अपने अंचल में समेट रहा था।

भारत के प्रारम्भिक मुग़ल सम्राट् हुमायूँ की वह क़ब्र, उसका वह विशाल मक़बरा, अन्तिम मुग़लों का वह निवासस्थान ही उस स्वर्ग का नरक था। उसकी निर्माता थी, उसी अभागे सम्राट् की विधवा विरही प्रेयसी। उस शासक ने जब जब मस्ती और सफलता की जादू भरी प्याली को मुँह से लगाया, जब जब उसने मादकता का आह्वान किया, तब तब वह एकाएक अदृश्य हो गई,...और वह सम्राट्...हकबका सा होकर इधर-उधर ताकता ही रह गया; और उसे जब कुछ होश हुआ तो देखा कि वह विफलता तथा विपत्तियों का हलाहल पी रहा था। जीवन भर दुर्भाग्य का मारा वह ठोकरें खाता फिरा, और एक दिन ठोकर खाकर जब वह दूसरे लोक में लुढ़क पड़ा, तब तो उसका मक़बरा मुग़लों के दुर्भाग्य का आगार बन गया, उनके लिए साक्षात् नरक हो गया।

वह विधवा थी, और उसने अपने दिल के दर्द को उँडेल दिया; उस मक़बरे के स्वरूप में उसने अपने दर्द और दुःख को ही नहीं किन्तु अपने प्रियतम के दुर्भाग्य को भी घनीभूत कर दिया। वहाँ श्वेत संगमरमर के टुकड़े कहीं कहीं आशावाद तथा सुखमयी भावना प्रदर्शित करते हैं, किन्तु फिर भी वह मक़बरा उन टूटे हुए दिलों के रुधिर से सने हुए टुकड़ों का एक संग्रह मात्र है। रुधिर के आँसुओं से उस विधवा ने उस मक़बरे का अभिसिंचन किया था, और आज भी इस मक़बरे में सुन पड़ती है, उस अभागे सम्राट् के टूटे दिल की व्यथा, उसकी दर्द भरी कसक।

और इन्हीं को देख कर सब मनदुःखी एकत्रित हो ही जाते हैं।

अपने दिल का दर्द दूसरों को सुनाने के लिए कौन नहीं छटपटाता, और विशेषतया उसी दर्द के मारे कराहने वालों के पास जा पहुँचने को तो वह बहुत ही लालायित हो जाता है। हुमायूँ के अभागे दिल की दर्द भरी आह ने न जाने कितने दुःखी मुग़ल शासकों को अपनी ओर आकर्षित किया। दुःख का वह अपार सागर, निराशा की आहों का वह तपतपाया हुआ कुण्ड, आँसुओं का वह भीषण प्रवाह, टूटे हुए दिलों की वह दर्द भरी चीख़ !...आह ! ये ही तो उस मक़बरे को नरक बनाए हैं। वे टूटे दिल एक साथ बैठ कर रोते हैं, रो रो कर उन्होंने कई बार उन रक्त-रंजित पत्थरों को धो डाला; आज भी वे प्रति वर्ष महीनों रोते हैं, पर भग्न हृदय का वह रुधिर बहुत गहरा रंग लाया है, उनके धोये नहीं धुलता। और उस नरक का वह आशावाद, वे चमचमाते हुए स्फटिक स्थल, उनमें तो निराशा का आशावाद है। सितम पर सितम सह कर भी उफ़ न करने वालों के हृदयों की धीरता, उनकी उत्कट सहनशीलता ही उन श्वेत पत्थरों में चमकती है। नरक में रह कर भी जो दिल न टूटे और जिनमें से रुधिर न बहा वे ही उस मक़बरे में यत्र-तत्र जड़े हुए हैं; चमक चमक कर वे अपनी कठोरता संसार को प्रदर्शित करते हैं, और उन टूटे दिलों की ओर एक उपेक्षा भरी नजर डाल कर वीभत्स अट्टहास करते हैं।

× × ×

परन्तु स्वर्ग और नरक। उनका भेद, उनका महत्त्व एवं प्रभाव, उनका सौन्दर्य और कुरूपता,...इनको तो वे ही समझ सकते हैं जिनकी छाती में हृदय नामक कोई वस्तु विद्यमान हो, जिनके वक्षःस्थल में एक दिल—चाहे वह अधजला, झुलसा या टूटा हुआ ही क्यों न हो—धड़कता हो। उस स्वर्ग को, उस नरक को, दिलवालों ने ही तो बसाया। यह दुनिया, इसके बन्धन, सुख और दुःख...ये सब भी तो दिलदारों के ही आसरे हैं। किन्तु उस पुंश्चली दिल्ली के साथ रह कर अनेकों ने दिल नामक वस्तु के अस्तित्व को भुला दिया

था; उसे खोकर उसके अस्तित्व का उन्हें पता भी न रहा। दिल ! हृदय ! उसके नाम पर तो उनके पास दो चुटकी राख मात्र थी; उसी राख को शरीर में रमाए वे संसार में घूमते थे, और उस स्वर्ग और उस नरक, उन दोनों लोकों को उन्होंने त्याग दिया। स्वर्ग ! उनके लिए तो वह एक भीषण तीक्ष्ण व्यंग मात्र था। सुख, इस नाम की वस्तु से तो वे पूर्णतया अनभिज्ञ ही थे, और मस्ती...यह तो एक स्वर्गीय वस्तु थी, दिलदारों की ही एकमात्र सम्पत्ति थी। नरक तो उनके लिए खिलवाड़ मात्र था; उनका दुःख, उनकी तीक्ष्णता, कटुता, उनके जीवन के प्रारम्भिक दुःखों की भी समता करने की क्षमता उस नरक में न थी। और क्रन्दन...जहाँ अग्नि हो वहीं लपटें धाँय धाँय करती हैं, जहाँ आग हो वहीं पानी भी होता है, जहाँ दिल की धड़कन हो वहीं से चीख भी निकलती है, जहाँ आशा हो वहाँ ही निराशा का भी अनुभव होता है। यहाँ तो मूक निश्वास भी तो नहीं निकलने पाती थी कि दुखियों के एकमात्र आसरे, उस नरक को भी कहीं वह भस्म न कर दे।

वे दिल को खो बैठे थे, स्वप्नलोक को उन्होंने त्याग दिया था, परन्तु अपनी भयंकर दाहक निश्वास के स्पर्श मात्र से निर्जीव पत्थर तक की क्या दशा होगी, इस विचार ने ही उस हृदय-विहीन जहान-आरा को विचलित कर दिया, वह सिहर उठी और उसकी अन्तिम श्वासों में आवाज़ आई—"नहीं ! नहीं ! मेरी क़ब्र पर पत्थर न रखना; मेरी इस कठोर छाती पर न जाने कितने दिल टूट चुके हैं, तपतपाए आँसुओं की न जाने कितनी धाराएँ वह चुकी हैं, उसी पर पत्थर रखना...यह न करना। उसके भार का मुझे कोई ख़याल नहीं है, उसके अस्तित्व का मुझे पता भी न लगेगा, परन्तु...वह मेरी इस उत्तप्त छाती पर रह कर उस बेचारे पत्थर की क्या दशा होगी ?...उन निश्वासों में उसे झुलसना होगा, इस दहकते हुए वक्षःस्थल का स्पर्श...।"

आज भी उन हृदय-विहीन मृत-कंकालों की निश्वासें उनकी क़ब्रों पर छाई हुई रहती हैं, और उन क़ब्रों पर यत्र-तत्र उगी हुई घास उन भग्न हृदयों के घावों को हरा रखती है। अपने घावों को यों बता बता कर वे कंकाल संसार को चेतावनी देते हैं, उन्हें खोल खोल कर वे दिखाते हैं कि इस जीवन में सुख नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। संसार को ज़रा सी बात में घबराहट होने लगती है, और जिसे संसार दुःख कहता है, जिसके खयाल मात्र से वह रो पड़ता है, वह भी तो खिलवाड़ ही है। जो दुःख कहीं सचमुच आ पहुँचता है तो वह मृत्यु के बाद भी साथ नहीं छोड़ता। इन कंकालों के दुःख से ही विश्व-वेदना का उद्भव होता है, और उन्हीं के निश्वासों से संसार की दुःखमयी भावना उद्भूत होती है।

× × ×

[४]

परन्तु बेदिल वाले, दिल से हाथ धोकर भी संसार में विचरने वाले, कितने हैं? दिल वाले, टूटे दिल वाले, उसकी याद कर कर के रोने वाले, दिल का सौदा करने वाले..., उनकी गणना...दिल तक कौन पहुँच पाया है जो उनकी संख्या निर्धारित कर सके। और उस स्वर्ग में,...दिल का ही तो वहाँ एकछत्र शासन था। अनन्त यौवन, चिर सुख तथा मस्ती इन सब का निर्माण करके इन्हीं के आधार पर दिल ने उस स्वर्ग की नींव डाली थी।...परन्तु साथ ही असन्तोष तथा दुःख का निर्माण भी तो दिल के ही हाथों हुआ था। स्वर्ग और उसके साथ नरक का सहवास! विष किसके लिए घातक नहीं होता, छूत किसे नहीं लगती?...दिलवालों के स्वर्ग में नरक का विष फैला। अनन्तयौवना विषकन्या भी होती है। उसका सहवास करके कौन चिरजीवी हुआ है? सुख को दुःख के भूत ने सताया। मस्ती और उन्माद को क्षयरूपी राजरोग लगा।

स्वर्ग और उसमें विष, रोग तथा भूतों का प्रवेश ! वह स्वर्ग था, किन्तु था इसी भौतिक लोक का स्वर्ग। जहाँ गुण तक क्षय हो जाते हैं वहाँ सुख का अक्षय रहना, पुण्य तक जहाँ क्षीण हो जाते हैं, वहाँ मादकता का अक्षुण्ण बने रहना असम्भव है। अनन्तयौवना ने अभिसिंचन किया था, परन्तु वारांगना को अपनाकर कौन सुखी हुआ है ? वह अक्षय सुख,...वह तो स्वर्ग में, दूसरे लोक के उस सच्चे स्वर्ग में भी तो प्राप्त नहीं होता; पुण्य तो वहाँ भी क्षय होते हैं, पाप वहाँ भी साथ नहीं छोड़ते और पुनर्जन्म का भूत वहाँ भी जा पहुँचता है, पुण्यात्माओं तक को वह सताता है, तब इस लोक के स्वर्ग में उनका अभाव...यह अनहोनी बात कैसे सम्भव हो सकती थी।

चिरयौवना वारांगना का सहवास, उसे छोड़ कर मुग़ल साम्राज्य का वह सन्यासी औरंगज़ेब उस देश में पहुँचा, उस लोक की यात्रा की जहाँ से लौट कर पुनः वह उस भौतिक स्वर्ग में न आ सका।... परन्तु अनन्तयौवना का वह शृंगार, उसकी वह बाँकी अदा, उसकी वह तिरछी चितवन, उन सुन्दर अधरों की वह लाल लाल मादकता ...संसार मुग्ध था,...अन्य मुग़ल सम्राट् तो उस प्रेयसी के तलुए सहलाने को दौड़े चले आए।

परन्तु अनन्तयौवना को भार्या बना कर कौन जीता रहा है ? स्वर्ग में रह कर, वहाँ की अप्सराओं की चर्या स्वीकार करके कौन इस भूतल पर पुनः नहीं लौटा ? चिरयौवना विषकन्या बन गई, और जब उसका विष व्याप्त हुआ मुग़ल साम्राज्य की नस नस में, तब उस मदमाते सबल साम्राज्य के अंग शिथिल हो गए, उसके सुन्दर सुडौल अंगों में कोढ़ फूट निकली, गल गल कर, सड़ सड़ कर उसके अंग गलित हो गए, वे क्षत-विक्षत हो गए। और सम्राटों का यौवन, दौलत की देवी, उस लाल लाल मदिरा पर न्यौछावर होकर इस देवी की सहचरियों में बिखर गया। दिल्ली के उस स्वर्ग की

मस्ती गली-गली भटकती फिरी, यत्र-तत्र ठोकरें खाती फिरी, स्वर्ग के देवताओं की मादकता हिजड़ों के पैरों में लोटने लगी, उनका वैभव और विलासिता सूदखोर वनियों के हाथ विके, उनके धर्म को लालिमा ने अछूता न छोड़ा, उनकी सत्ता को जंगली अफ़ग़ानों ने ठुकराया, उनके ताज और तख़्त को रौंद कर ईरान के गड़रिये ने दिल्लीश्वर की प्रजा का भेड़-बकरियों की तरह संहार किया। ... और यह सब देख कर भी स्वर्ग की आत्मा अविचलित रही।

वूढ़ों का बचपन था, उनका यौवन लौट रहा था, अशक्तों की सत्ता अपनी शान में ही ऐंठी जा रही थी, जहान के शाह के वंशजों ने भागना सीखा, संसार के रक्षक की बहू-बेटियाँ...उफ़ ! उनकी वह दर्दनाक कहानी, उन महान् मुग़लों के यश-चन्द्र की वह कालिमा... काली स्याही से पुते हुए मुँह वाली लोह लेखनी भी उसका उल्लेख करते संकोच करती है; उनके दर्द के मारे उसका भी दिल फट कर दो टुकड़े हो जाता है। उस स्वर्ग की वह न्यायतुला सुख के उस महान् भार को नहीं सह सकी। अपनी न्यायतुला कहीं नष्ट न हो जाय, इसी विचार से उस महान् अदृष्ट तुलाधारी ने सुख-दुःख का समतोल करने की सोची। स्वर्ग के सुख के सामने तुलने को दुःख का सागर उमड़ पड़ा; उस स्वर्ग के वे अधिष्ठाता इस दुःख-सागर स बचने को इधर-उधर भागते फिरे; अनेकों ने तो दूसरी दुनिया में ही जाकर चैन ली।

और आलम का शाह जब उस दुःखपूर्ण स्वर्ग का अधिष्ठाता बना तो वह स्वर्ग को ढूँढ़ता फिरा; कभी गंगा के प्रवाह में उसके अस्तित्व का आभास उसे देख पड़ा, तो कभी त्रिवेणी में ही उसे सुख का प्राधान्य जान पड़ा। वह भौतिक स्वर्ग क्षत-विक्षत हो गया था,...उसका एक प्रेमी, साम्राज्य, मर चुका था, सर्वदा के लिए विनष्ट हो गया था। और जब उस स्वर्ग का दूसरा प्रेमी स्वर्ग में लौटा तो वह उस स्वर्ग की सुन्दरता को खोजते खोजते इस संसार

के सौन्दर्य को भी खो बैठा। स्वर्ग का सुख पाने की इच्छा करने वाले को संसार का सुख भी न मिला।...आलम का शाह पालम तक शासन करता था; स्वर्ग का अधिष्ठाता, उसका एकमात्र अधिकारी उस स्वर्ग को एक नज़र भी न देख पाता था; और जब इस लोक में देखने योग्य कुछ न रहा तब वह प्रज्ञाचक्षु हो गया। परन्तु वारांगनाओं को दिव्य दृष्टि से क्या काम ? उन्होंने अन्धों का कब साथ दिया है ? अन्धे कब तक अन्धी पर शासन कर सके हैं ? दुर्भाग्य रूपी दुर्दिन के उस अँधियारे में, नितान्त अन्धेपन की उस अनन्त रात्रि में, रात्रि का राजा उस अंधी को ले उड़ा, और वह पहुँची वहाँ जहाँ समुद्र बीच शेषशायी सुखपूर्ण विश्राम कर रहे थे।

× × ×

"तुम्हारे पाँवों में बेड़ियाँ पड़ी हैं और दिल पर ताले लगे हुए हैं; ज़रा सम्हल कर रहो !

"आँखें बन्द हैं, पाँव कीचड़ में धँसे हुए हैं; ज़रा जागो, उठो !

"पश्चिम की ओर जा रहे हो, परन्तु तुम्हारा मुख तो पूरब ही की ओर है; पीछे क्यों ताक रहे हो; ज़रा अपने उद्देश्य की ओर तो दृष्टि डालो।"

परन्तु उन बेड़ियों से कौन छूटा है ? बूढ़ों का यौवन कब उन्हें पार लगा सका है ? अशक्तों की सत्ता पर तो स्त्रियाँ भी हँसती हैं ! दिल को बिखेर कर उसे खो कर ताले लगाना; उनके पास अब रहा क्या है जो सम्हलें ? वे बन्द आँखें कब खुली हैं ? उनकी वह मस्ती, उस मस्ती की वह खुमारी और उन सब पर स्वर्ग का निवास ! परवशता के कीचड़ में फँसे हुए अन्धे कब सम्हल सके हैं ? सुख-लिप्सा को पूर्ण करने की इच्छा से विलासिता के उस कीचड़पूर्ण स्वर्ग में धँस कर कौन निकल सका है ? जागो और उठो ! ...उस स्वर्ग में, मनप्रसाद स्वर्ग में भी, किसे होश था ? किसकी प्याली खाली थी ? किसकी आँखों में मस्ती न थी ?

कौन स्वप्न नहीं देख रहा था ? . . . गए बीते सुख के स्वप्न, उस स्वर्ग की मादकता तथा भावी सुख की आशा का भार . . . अशक्तों की पलकें कहाँ तक इन सब को उठा कर भी खुली रह सकती थीं ? . . . और स्वर्ग के निवासियों को यह चेतावनी, न्यायतुला का उन्हें स्मरण दिलाना, सुखभोग करने वालों को दुःख की याद दिलाना . . . ! वह चेतावनी स्वयं उस स्वर्ग में खो सी गई। उस न्यायतुला के दोनों पलड़ों में झूलती हुई वे आँखें भी एकटक देखती रह गईं मुग़लों के इस पतन को, बुढ़ापे में उनके इस खिलवाड़ को। बूढ़ों का बचपन एक बार फिर खेलता सा नज़र आया, उनकी सत्ता लौटती सी जान पड़ी, उनके स्वर्ग में फिर बहार आती देख पड़ी . . . , और उनका वैभव, वह तो अपने स्वामी की याद कर रो पड़ा . . . उसे अब वहाँ भी पूछता कौन था ?

स्वर्ग ! स्वर्ग ! उसने फिर अपनी सल्तनत को लौटते देखा। इस लोक की बादशाहत खोकर, यहाँ अपना दिवाला निकाल कर, उसको देख सकने वाली आँखों को भी गँवा कर, अब उस स्वर्ग के शासक ने कल्पनालोक पर धावा मारा, और वहाँ अपना शासन स्थापित किया। दिव्य दृष्टि पाकर उस स्वर्ग के अधिष्ठाता को दूसरे लोक की ही बातों की सुध आने लगी। राज्यश्री को खोकर अब सरस्वती का आह्वान किया जाने लगा। दिल्ली में वही दरबार लगता था, दीवान आम में नक़ीब की आवाज़ पर आँखें बिछ जाती थीं, और शाहंशाह दो सुन्दरियों पर अपना भार डाले आते थे, तख़्त पर आसीन होते थे; परन्तु वहाँ इस पार्थिव साम्राज्य की चर्चा न होती थी, अब तो कल्पनालोक के दूत बैठे बैठे उस दूसरे लोक की ही ख़बरें सुनाते थे। शायर के बाद शायर आता था, अपनी शायरी सुनाता था, और शाहंशाह सिर धुन धुन कर सुनता था, "वाह ! वाह !" कह कर रह जाता था। और कई बार तो स्वयं भी कहने लगता था "ई जानिब ने फ़रमाया है", अपनी ग़ज़ल पढ़ता था, दर-

बार के चारों कोनों में "आदाब !" "आदाब !" की आवाज़ें गूँजने लगती थीं। अब उस दरबार में चर्चा होती थी उस दूसरे लोक में होने वाली अनेकानेक घटनाओं की; वहाँ मयख़ाने का उजड़ना, साक़ी की ग़ैरहाज़री, जाम का ढुलक जाना, यारों का बिछड़ जाना, रक़ीबों की ज्यादती, माशूकों की कठोरता, आशिकों की बेबसी, उनके मरने के बाद उनकी मज़ार पर आकर माशूकों का रोना और माशूकों की गली से आशिकों का निकाला जाना...। और दिल्लीश्वर ने एक बार फिर जगदीश्वर की समता ही न की परन्तु इस बार तो उसे भी हरा दिया; दिल्लीश्वर की इस नवीन बादशाहत में कोई भी बन्धन न थे और न यहाँ जगदीश्वर की भीषण यातना का डर ही उन्हें सताता था।

परन्तु...उस उजड़ते हुए भग्नप्राय स्वर्ग की दर्दनाक आवाज़ पहुँची उस कल्पनालोक में भी। सदेह स्वर्ग में, कल्पनालोक में, पहुँच कर भी कौन अपने टूटे दिल को भुला सका है। वहाँ भी वही दर्द उठता था, कसक का अनुभव होता था, और जब कभी वह टूटा दिल थक कर सो जाता था, तभी कुछ उल्लास आता था,...परन्तु वह क्षणिक उल्लास और उसके बाद फिर वही शोक...उस मदमाते स्वर्ग की इससे अधिक व्यंगपूर्ण तीक्ष्ण आलोचना नहीं हो सकती थी।...और तभी इस स्वर्ग के पीड़ित मानव, अपने टूटे दिलों के कारण ही, उस दूसरे लोक में भी शासन न कर सके। बहादुर 'ज़फ़र' तो उस कल्पनालोक में भी रोता था; कफ़नी पहन कर ही वह वहाँ पहुँचा था। वहाँ भी वही बेबसी थी, वही रोना था। वहाँ भी रुधिर के आँसुओं ने कल्पना की उज्ज्वलता को रँग दिया, उन बहाए गए आँसुओं में सारी मस्ती बह गई थी, उन आँसुओं की उन्मत्तता से वह सुकोमल भावना मुरझा कर मृतप्राय हो गई थी। हाँ! 'फ़लक ने लूट के वीरान कर दिया' था उस 'उजड़े दयार' की दशा को देख कर कभी कभी ही जब कवि का दिल टूट रोते रोते

सो' जाता था, तब कहीं एकाध सेहरा लिखा जाता था, और तभी इस कल्पनालोक के दो महारथियों में चोंचें हो जाया करती थीं।

नहीं ! नहीं ! यह सुख भी स्वर्ग को देखना नसीब न हुआ। उसका दिल टूट गया। स्वर्ग में, सुखलोक में रह कर भी कल्पनालोक में विचरना स्वर्ग से देखा न गया। स्वर्ग में भी ईर्प्या की अग्नि धधक उठी, स्वर्ग का जो कुछ भी सुख बचा था वह भी जल कर भस्म हो गया; उस 'उजड़े दयार का वह मुश्तेगुबार' उस भीषण दावानल में जल भुन कर ख़ाक हो गया; और दुर्भाग्य की उस आँधी ने उन भस्मावशेषों को यत्र-तत्र बिखेर दिया। नहीं ! नहीं ! उस दुर्भाग्य से उस स्वर्ग की बेबसी का वह मज़ार तक न देखा गया, उसे भी खण्ड-खण्ड कर उलट दिया और वह निर्जीव मृतप्राय पिण्ड लुढ़कता लुढ़कता उस स्वर्ग से नरक में जा पड़ा।

× × ×

[५]

स्वर्ग में उस सुखलोक में बेबसी का मज़ार, . . . वह उजड़ा स्वर्ग भी काँप उठा अपने उस शूल से। निरन्तर रक्त के आँसू बहाने वाले उस नासूर को निकाल बाहर करने की उस स्वर्ग ने सोची। परन्तु . . . उफ़ ! वह नासूर स्वर्ग के दिल में ही तो था, उसको निकाल बाहर करने में स्वर्ग ने अपने हृदय को फेंक दिया। और अपनी मूर्खता पर क्षुब्ध स्वर्ग जब दर्द के मारे तड़प उठा, तब भूडोल हुआ, अन्धड़ उठा, प्रलय का दृश्य प्रत्यक्ष देख पड़ा। पुरानी सत्ता का भवन ढह गया, समय-रूपी पृथ्वी फट गई और मध्ययुग उसके अनन्त गर्भ में सर्वदा के लिए विलीन हो गया। सर्वनाश का भीषण ताण्डव हुआ, रुधिर की होली खेली गई, तोपों की गड़गड़ाहट सुन पड़ी, हज़ारों का संहार हुआ, सहस्रों व्यक्ति बेघरबार के हो गए, दर दर के भिखारी बने। यमुना के प्रवाह का मार्ग भी बदला, उस स्वर्ग को,

स्वर्ग के उस शव को, छोड़ कर वह भी चल दी, और अपने इस वियोग पर वह जी भर कर रोई; किन्तु उसके उन आँसुओं को, स्वर्ग के प्रति उसके इस स्नेह को स्वर्ग के दुर्भाग्य ने सुखा दिया; उस नहर-इ-ब्रहिश्त ने भी स्वर्ग की धमनियों में बहना छोड़ दिया। और अपनी उस प्रिय सखी, उस नवनगरी की दशा देख कर यमुना का वक्षःस्थल भग्न हो गया, खण्ड खण्ड होकर आज भी उसी मृत कंकाल के पाँवों तले बालू के रूप में बिखरा पड़ा है। स्वर्ग भी खण्ड खण्ड हो गया, उसकी भाग्य-लक्ष्मी वहीं उन्हीं खण्डहरों में दब कर मर गई। और उस प्रेयसी के वे प्रेमी सर्वनाश के इस भीषण स्वरूप को देख कर काँप उठे और अपने स्वर्ग तक को डगमगाते देख, उसके नाश की घड़ियाँ आई जान वे भाग खड़े हुए।

उफ़ ! उस स्वर्ग की वह अन्तिम रात ! जब स्वर्गीय जीवन अन्तिम साँसें ले रहा था। प्रलय का प्रवाह स्वर्ग के दरवाजे पर टकरा टकरा कर लौटता था और अधिकाधिक वेग के साथ पुनः आक्रमण करता था। साँय साँय करती हुई ठण्डी हवा बह रही थी, न जाने कितनों के भाग्य-सितारे टूट टूट कर गिर रहे थे। दुर्भाग्य के उस दुर्दिन की अँधेरी अमावस्या की रात में उस स्वर्ग में घूमती थीं उस स्वर्ग के निर्माताओं की, उसके उन महान् अधिष्ठाताओं की प्रेतात्माएँ, कोने कोने में उस पुराने स्वर्ग को खोजती थीं, उसको इस नए रूप-रंग में न पहिचान कर खोई हुई सी हो जाती थीं, पागल की तरह दौड़ती थीं और अपने उस भयोत्पादक स्वरूप को लेकर फिर अंधकार में विलीन हो जाती थीं। नृत्य और विलासिता के मुर्दों के मांस को दुःख तथा विवशता रूपी गीदड़ फाड़-फाड़ कर, नोच-नोच कर खा रहे थे, उनकी सूखी हड्डियों को चबा रहे थे। राजसत्ता की क़ब्र को खोद-खोद कर उसमें तह तक पहुँच कर उसके निर्जीव कंकाल को बाहर खींच निकालने का प्रयत्न किया जा रहा था। उस भीषण सन्ध्या के समय राज्यश्री ने मृत्युकी अपनी उस

भयंकर मौत को स्वर्ग में घुसते देखा; हृदय को कँपा देने वाले अपने कंकालरूपी स्वरूप को जीवन्मृत की काली साड़ी में लपेटे वह मुग़लों को रिझाने, उनसे प्रेम-प्रणय करने आई थी। तब तो राज्यश्री अपने प्रेमी का भविष्य सोच कर धक् से रह गई, बेहोश होकर चिर निद्रा में सो गई। और मुग़लों की राज्यश्री की उस करुणापूर्ण मृत्यु पर दो आँसू बहाने वाला भी उस दिन कोई न मिला।

आह! उस भीषण रात को दूर दूर तक सुन पड़ता था उस विलासितापूर्ण स्वर्ग में बच्चों का चीखना, विधवाओं का विलाप, सधवाओं का सिसकना, बुड्ढों का बिलखना और युवक-युवतियों का उसासें भरना। परन्तु उस रात भर भी स्वर्ग में मुग़लों का अन्तिम चिराग़ जलता रहा, बेबसी के उस मज़ार को वह आलोकित करता रहा; किन्तु आज उस मज़ार पर न तो फूल थे, न पतंगे ही जलने को आ रहे थे, और न बुलबुल का संगीत ही सुनाई देता था। हाँ! उस झिलमिलाती हुई लौ के उस अन्धकारपूर्ण उजेले में अदृष्ट स्वरूप धारण किए, उस स्वर्ग की वह आत्मा, उस स्वर्गलोक का वह प्रेत, रो रो कर उस मज़ार को गीली कर रहा था, और अपनी दर्दभरी आवाज़ में गा रहा था—

"न किसी की आँख का नूर हूँ
न किसी के दिल का क़रार हूँ।
जो किसी के काम न आ सके
मैं वह एक मुश्तेगुबार हूँ।
मैं नहीं हूँ नग़मए जाँफ़िज़ाँ
मेरी सुन कर कोई करेगा क्या?
मैं बड़े बिरोग की हूँ सदा,
किसी दिलजले की पुकार हूँ।
मेरा रंगरूप बिगड़ गया
मेरा यार मुझसे बिछड़ गया।

जो चमन ख़िज़ाँ से उजड़ गया,
मैं उसी की फ़स्लेबहार हूँ।
न तो मैं किसी का हबीब हूँ
न तो मैं किसी का रक़ीब हूँ।
जो बिगड़ गया वह नसीब हूँ
जो उजड़ गया वह दयार हूँ।
कोई फूल मुझ पर चढ़ाये क्यों,
कोई मुझ पे अश्क बहाये क्यों?
कोई आ के शमआ जलाये क्यों,
के मैं बेबसी का मज़ार हूँ।"

और ज्यों ज्यों इस गाने के अन्तिम शब्द सुन पड़ने लगे, जब इसकी आख़िरी तान कान में पड़ रही थी, मुर्ग़े ने बाँग दी और अन्धकार में वह प्रेत विलीन हो गया; वह दिया टिमटिमाता रह गया, शान्त निस्तब्धता छा गई और वहीं पास ही पड़ा था मुग़ल वंश का वह निर्जीव अस्थिपंजर, उनकी आकांक्षाओं के वे अवशेष, उनकी साधनाओं की वह समाधि...।

सूरज निकला।...अन्धड़ चल रहा था, दुर्दिन के सब लक्षण पूर्णतया दिखाई दे रहे थे, भाग्याकाश दुर्भाग्यपूर्ण बादलों से छा रहा था;...वह दिया, उस स्वर्गीय जीवन की अन्तिम आशाओं का वह चिराग़—स्वर्गीय स्नेह की वह अन्तिम लौ झिलमिला कर बुझ गई; और तब...उस वंश की आशाओं का, उस साम्राज्य के मुट्ठी भर अवशेषों का, अकबर और शाहजहाँ के वंशजों की रही-सही सत्ता का जनाज़ा उस स्वर्ग से निकला। रो रो कर आसमान ने सर्वत्र आँसुओं के ओसकण बिखेरे थे, इस कठोर-हृदया पृथ्वी को भी आहों के कुहरे में राह सूझती न थी। परन्तु...विरहियों का मारा, जीवन-यात्रा का वह थका हुआ पथिक, उस 'उजड़े दयार' का वह एकमात्र बुलबुल, जिस पर किसी तरह का भी [illegible] के

भयंकर सौत को स्वर्ग में घुसते देखा; हृदय को कँपा देने वाले अपने कंकालरूपी स्वरूप को जीवन्मृत की काली साड़ी में लपेटे वह मुग़लों को रिझाने, उनसे प्रेम-प्रणय करने आई थी। तब तो राज्यश्री अपने प्रेमी का भविष्य सोच कर धक् से रह गई, बेहोश होकर चिर निद्रा में सो गई। और मुग़लों की राज्यश्री की उस करुणापूर्ण मृत्यु पर दो आँसू बहाने वाला भी उस दिन कोई न मिला।

आह! उस भीषण रात को दूर दूर तक सुन पड़ता था उस विलासितापूर्ण स्वर्ग में बच्चों का चीखना, विधवाओं का विलाप, सधवाओं का सिसकना, बुड्ढों का बिलखना और युवक-युवतियों का उसासें भरना। परन्तु उस रात भर भी स्वर्ग में मुग़लों का अन्तिम चिराग़ जलता रहा, बेबसी के उस मज़ार को वह आलोकित करता रहा; किन्तु आज उस मज़ार पर न तो फूल थे, न पतंगे ही जलने को आ रहे थे, और न बुलबुल का संगीत ही सुनाई देता था। हाँ! उस झिलमिलाती हुई लौ के उस अन्धकारपूर्ण उजेले में अदृष्ट स्वरूप धारण किए, उस स्वर्ग की वह आत्मा, उस स्वर्गलोक का वह प्रेत, रो रो कर उस मज़ार को गीली कर रहा था, और अपनी दर्दभरी आवाज़ में गा रहा था—

"न किसी की आँख का नूर हूँ
न किसी के दिल का क़रार हूँ।
जो किसी के काम न आ सके
मैं वह एक मुश्तेग़ुबार हूँ।
मैं नहीं हूँ नग़मए जाँफ़िज़ाँ
मेरी सुन कर कोई करेगा क्या ?
मैं बड़े बिरोग की हूँ सदा,
किसी दिलजले की पुकार हूँ।
मेरा रंगरूप बिगड़ गया
मेरा यार मुझसे बिछड़ गया।

जो चमन ख़िज़ाँ से उजड़ गया,
मैं उसी की फ़स्लेबहार हूँ।
न तो मैं किसी का हबीब हूँ
न तो मैं किसी का रक़ीब हूँ।
जो बिगड़ गया वह नसीब हूँ
जो उजड़ गया वह दयार हूँ।
कोई फूल मुझ पर चढ़ाये क्यों,
कोई मुझ पे अश्क बहाये क्यों?
कोई आ के शमआ जलाये क्यों,
के मैं बेबसी का मज़ार हूँ।"

और ज्यों ज्यों इस गाने के अन्तिम शब्द सुन पड़ने लगे, जब इसकी आख़िरी तान कान में पड़ रही थी, मुर्ग़े ने बाँग दी और अन्धकार में वह प्रेत विलीन हो गया; वह दिया टिमटिमाता रह गया, शान्त निस्तब्धता छा गई और वहीं पास ही पड़ा था मुग़ल वंश का वह निर्जीव अस्थिपंजर, उनकी आकांक्षाओं के वे अवशेष, उनकी साधनाओं की वह समाधि...।

सूरज निकला ।...अन्धड़ बढ़ रहा था, दुर्दिन के सब लक्षण पूर्णतया दिखाई दे रहे थे, भाग्याकाश दुर्भाग्यरूपी बादलों से छा रहा था;...वह दिया, उस स्वर्गीय जीवन की अन्तिम आशाओं का वह चिराग़—स्वर्गीय स्नेह की वह अन्तिम लौ झिलमिला कर बुझ गई; और तब...उस वंश की आशाओं का, उस साम्राज्य के मुट्ठी भर अवशेषों का, अकबर और शाहजहाँ के वंशजों की रही-सही सत्ता का जनाज़ा उस स्वर्ग से निकला। रो रो कर आसमान ने सर्वत्र आँसुओं के ओसकण बिखेरे थे, इस कठोर-हृदया पृथ्वी को भी आहों के कुहरे में राह सूझती न थी। परन्तु...विपत्तियों का मारा, जीवन-यात्रा का वह थका हुआ पथिक, उस 'उजड़े दयार' का वह एकमात्र बुलबुल, सितम पर सितम सह कर भी उसी साहस के

साथ मुग़लों की सत्ता तथा उनके अस्तित्व के जनाज़े को उठाए, अपने भग्न हृदय को समेटे चला जा रहा था।

स्वर्ग से निकल कर उसने एक वार घूम कर पीछे देखा; अपनी प्रियतमा नगरी के उस मृतप्राय जीवन-विहीन हृदय की ओर उसने एक नज़र डाली, और उस स्वर्ग की, मुग़लों की उस प्रेयसी की, अपने प्रियतम से अन्तिम वार चार आँखें हुईं; वह उस प्यारे की ओर एकटक देखती ही रह गई और दो हिचकी में उसने दम तोड़ा। आँखें खुली की खुली रह गईं, नेत्र-द्वार के वे पटल आज भी खुले पड़े हैं।

और वहादुर ने अपनी प्रेयसी की इस अंतिम घड़ी को देखा, उसने मुख फेर लिया; जनाज़ा आगे वढ़ा। धूल विखर रही थी; आज पैरों में पड़ी निरन्तर कुचली जाने वाली उस पृथ्वी ने भी स्वर्ग के अधिष्ठाताओं के सिर पर धूल फेंकी, और मृत स्वर्ग के उस स्वामी ने बेबसी की नज़र से आसमान को ताका। ख़ून की होली खेली जा चुकी थी; और स्वर्ग के निवासी अपने प्यारों को समेटे, स्वर्ग के उस मृत कंकाल को छोड़ कर भागे चले जा रहे थे। स्वर्ग से निकला हुआ वह अतीव दुःखी व्यक्ति, उस स्वर्ग का वह अन्तिम प्रेमी, आश्रय के लिए नरक में पहुँचा।

नरक! दुःख का वह आगार भी वेवसी के इस मज़ार को देख कर रो पड़ा, और...उफ़! नरक का भी दिल करुणा के आवेश में आकर फट पड़ा, पत्थर तक टुकड़े टुकड़े हो गए। और तव प्रथम वार दिल्ली में मुग़लों का झंडा गाड़ने वाले शाहज़ादे तथा वाद के अभागे सम्राट् हुमायूँ की क़ब्र ने उस जीवित समाधि की अन्तिम घड़ियाँ देखीं। और वहीं उस नरक में, अकवर की प्यारी सत्ता पृथ्वी में समा गई, जहाँगीर की विलासिता विखर गई, शाहजहाँ का वैभव जल-भुन कर ख़ाक हो गया, औरंगज़ेब की कट्टरता मुग़लों के रुधिर में डूव गई और पिछले मुग़लों की असमर्थता भी न जाने

कहाँ खो गई। लोहा बजा कर दिल्ली पर अधिकार करने वाले लोहा खड़खड़ाते हुए दिल्ली से निकले; लोहा लेकर वे आए थे, लोहा पहिने वहाँ से गए।

नरक की देखती आँखों स्वर्ग के प्यारों ने तड़प तड़प कर दम तोड़ा। वहाँ दिल्ली के अन्तिम मुग़ल सम्राट् की एकमात्र आशाएँ रक्तरंजित होकर पड़ी थीं। कुचली जाने पर उनका लोथड़ा ख़ून से शराबोर खण्ड खण्ड होकर पड़ा था; और उन भग्नाशाओं के घाव तक मुग़लों के उस भीषण दुर्भाग्य पर ख़ून के दो आँसू बहाए बिना न रह सके। अन्तिम बार उस पांचाली ने अपने पुत्रों को सुर्ख़रू होकर अपने सम्मुख आते देखा,...और उसका पति वहीं सिर नीचा किए बैठा बेबस देख रहा था। उफ़!...दुर्भाग्य की भीषण भट्टी में आँसू सूख गए थे, आहें भस्म हो गई थीं; और उसकी उस त्वचा में रुधिर शेष रहा न था, निर्जीव होकर झुर्रियों का बाना पहने वह निश्चेष्ट पड़ी थी। अरे! उसके केशों तक ने भस्म रमा ली थी। परन्तु प्रलय का ऐसा हृदयद्रावक दृश्य भी उसे रुला न सका। जीवन भर रुधिर की घूंट पी जाने वाला इस वार आँसू पीकर ही रह गया।

मुग़ल साम्राज्य ने दो हिचकी में दम तोड़ा; नरक ने उस दहकते हुए स्नेह को, मस्ती की उस अन्तिम प्याली की रही-सही तलछट को मिट्टी में मिलते देखा; उन आशा-प्रदीपों को बुझते देखा...। उस नरक के वे कठोर पत्थर, असंख्यों के दुःख को देख कर भी न पसीजने वाले, अभागों के टूटे दिलों के वे घनीभूत पुंज भी रो पड़े, और आज भी उनके आँसू थमे नहीं हैं। मुग़ल साम्राज्य के वे घातक घाव आज भी उस नरक में हरे हैं, चट-चट कर उनमें घास बढ़ती है, और...आज भी उन्हीं घावों को देख कर अनजाने उनके दर्द का अनुभव होता है, आप ही आप दो आँसू टपक पड़ते हैं।

आँसू ढलक रहे थे, उनका प्रवाह उमड़ रहा था, नरक भी सिसक

सिसक कर रो रहा था, उसासें भर रहा था, निश्वासें लेता था... और उन्हीं निश्वासों ने उस बेबसी के मज़ार को नरक से भी उड़ा दिया। स्वर्ग के उस अन्तिम उपभोक्ता, मुग़ल वंश के उस ज़िन्दे जनाज़े को नरक में भी स्थान न मिला; दुःखों का आगार भी उस दुखियारे को अपने अंचल में न समेट सका, उसे आश्रय न दे सका। जलते हुए अंगारों को छाती से लगा कर कौन जला नहीं है ? और उस उजड़े स्वर्ग में, उस विलखते हुए नरक में...दहकते हुए अंगारे चुनने वाले वहाँ न मिले।

बहादुर नरक में भी लुट गया। वहाँ उसने अपने टूटे दिल को भी कुचला जाते देखा, उस हृदय की गम्भीर दरारों की खोज होते देखी, और अपने दिल के उन टुकड़ों को संसार द्वारा ठुकराया जाते देखा। उफ़ ! वह वहाँ से भी भागा। अब तो अपनी आशा के एकमात्र सहारे को भी अपनी देखती आँखों नष्ट होते देख कर उसे आशा की सूरत तो क्या उसके नाम तक से घृणा हो गई। जहाँ के निवासियों के चेहरों से आशावादिता झलकती है, उसी इस भारत से उसने मुख मोड़ लिया। उसे अब निराशा का पीलिया हो गया; और तब वह पहुँचा उस देश में जहाँ सब कुछ पीला ही पीला देख पड़ता था। नर-नारी भी पीत वर्ण की चादर ही ओढ़े नहीं फिरते थे किन्तु स्वयं भी उस पीत वर्ण में ही शराबोर थे। निराशा के उस पुतले ने निराशापूर्ण देश की उस एकान्त अन्धेरी सुनसान रात्रि में ही अन्तिम साँसें तोड़ीं। निराशा की वह उत्कट घड़ी...नहीं ! नहीं ! उस दिन की याद कर, वह दिन देख कर फिर संसार में विश्वास करना—नहीं, यह नहीं हो सकता। मानवीय इच्छाओं की विफलता का वह भीषण अट्टहास ! 'जफ़र' की वे अन्तिम निश्वासें ...उफ़ !

× × ×

स्वर्ग उजड़ गया और दुर्भाग्य के उस अन्धड़ ने उसके टूटे दिल

को न जाने कहाँ फेंक दिया। उस चमन का वह बुलबुल रो चीख कर, तड़फड़ा कर न जाने कहाँ उड़ गया। उसकी आत्मा ने भी उसका साथ छोड़ दिया। और अब उसका मृत कंकाल वहीं पड़ा है। सावन-भादों की बरसात की तरह निरन्तर बहने वाले आँसू भी सूख गए; वह अस्थिपंजर, मांस-पेशियों तथा रक्त से विहीन, जीवन-रहित, हड्डियों का वह समूह निर्जीव होकर पड़ गया।

और अब भारतीय सम्राटों की उस असूर्यम्पश्या प्रेयसी का वह अस्थिपंजर दर्शकों के लिए देखने की एक वस्तु हो गया है। दो आने में ही हो जाती है राज्यश्री की उस लाड़ली, शाहजहाँ की नवोढ़ा के उस सुकोमल शरीर के रहे-सहे अवशेषों की सैर! बस दो आने में ही देख पाते हैं उस उजड़े स्वर्ग के वे सारे दृश्य। और उस उजड़े स्वर्ग को, उस अस्थिपंजर को देख कर संसार आश्चर्य-चकित हो जाता है, आँखें फाड़ फाड़ कर उसे देखता है, उसमें सुन्दरता का आभास देख पड़ता है, श्वेत हड्डियों के उन टुकड़ों में सुकोमलता का अनुभव करता है; उन सड़े-गले रहे-सहे लाल-लाल मांसपिण्डों में उसे मस्ती की मादक गंध आती जान पड़ती है। उस शान्त निस्तब्धता में उस मृत स्वर्ग के दिल की धड़कन सुनने का वह प्रयत्न करता है; उस जीवन-रहित स्थान में रस की सरसता का स्वाद उसे आता है; उस अँधेरे खण्डहर में कोहनूर की ज्योति फैली हुई जान पड़ती है। और रत्नों तक का तिरस्कार कर सोने-चाँदी को रौंदने वाले पत्थरों की छाती पर घास-फूस को बढ़ते देख कर भी जब संसार कह उठता है—"अगर पृथ्वी पर स्वर्ग है तो यहीं है! यहीं है! यहीं है!" तब तो...वह निर्जीव अस्थिपंजर अपनी नग्नता का अनुभव कर शर्म के मारे सकुचा जाता है, और पुरानी स्मृतियों को याद कर रो पड़ता है, उसासें भर कर सिसकता है। और उस निर्जीव निस्तब्ध मृत लोक में उन गहरी निश्वासों की मरमर ध्वनि सुन पड़ती है; उन श्वेत पत्थरों पर बहाए गए

आँसुओं के चिह्न देख पड़ते हैं; और तब. . . उस अँधेरी रात में उस स्वर्ग की विगत आत्मा लौट पड़ती है और रो-रो कर कहती सुन पड़ती है—

"आज दो फूल को मोहताज है तुरबत मेरी।"

और लाड़ली बेटी की वह माँ, विगत राज्यश्री, भी चीख़ने लगती है और उसासें भर कर कहती है—

"तमन्ना फूट कर रोई थी
जिस पर, यह वह तुरबत है।"

मुग़लों की प्रेयसी, अनन्तयौवना राज्यश्री की उस प्यारी पुत्री का अन्त हो गया। इस लोक के उस स्वर्ग की वह आत्मा न जाने कहाँ विलीन हो गई; परन्तु उसका वह मृत शरीर, उन मुग़लों की विलास-वासनाओं की वह समाधि, उनकी आकांक्षाओं का वह मज़ार, उस उत्तप्त स्वर्ग का वह ठण्डा अस्थिपंजर, मुग़लों के सुख-वैभव और मादकता के वे रूखे-सूखे अवशेष, उनके उन्मत्त प्रेम का वह कंकाल. . .अनन्तयौवना ने उन अवशेषों पर कफ़न डाल दिया और रुधिर के आँसू बहाए,. . .उफ़! उस कंकाल पर उन लाल लाल आँसुओं के दाग़, उनकी वह लालिमा आज भी देख पड़ती है।

उस स्वर्ग का वह कंकाल. . .अरे! उसका सुख-स्वप्न लेकर वे सारी रातें, वे सारी सुखद घड़ियाँ, वह मस्ताना जीवन, न जाने कहाँ विलीन हो गए? और . . .उनके पथ को आलोकित करने वाली, अपने प्रियतम के पथ में बिछने वाली, अपनी तिरछी चितवन द्वारा उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने वाली, वे मस्तानी आँखें बुझ कर भी आज खुली हैं, गड्ढे में निर्जीव धँसी पड़ी हैं। और आज भी उस कंकाल में रात और दिन होता है। मर जाने पर भी उस कंकाल का चिर यौवन उसको निर्जीव नहीं होने देता।. . .स्वर्ग की वह चिरसुख-वासना, मिलन की वह अक्षय आस, सुख-स्वप्न की वह मादकता, यौवन की वह तड़प, वह मस्ती, आशा की न बुझ

सकने वाली वह आग,...आज भी ये सब उस कंकाल में अपना रंग लाते हैं। वे लाल पत्थर आज भी आशा की अदृष्ट रूप से जलने वाली उस अग्नि में धधकते हैं, और उसी की दहकती हुई आग से वे पत्थर, निर्जीव पत्थर, भी लाल लाल हो रहे हैं; और हाड़-मांस की वह राख, हड्डियों का वह ढेर, वे श्वेत पत्थर...आँसुओं के पानी से बुझने पर भी आज उनमें गरमी है। और जब सूरज चमकता है और उस कंकाल की हड्डी हड्डी को करों से छूकर अपने प्रकाश द्वारा आलोकित करता है, तब वे पत्थर अपने पुराने प्रताप को याद कर तथा सूरज की इस ज्यादती का अनुभव कर तपतपा जाते हैं; उन्हें अपने गए बीते यौवन की याद आ जाती है, अपना विनष्ट सौन्दर्य तथा अपना अन्तर्हित वैभव उनकी आँखों के सम्मुख नाचने लगता है; और रात्रि में चाँद को देख कर उन्हें सुध आ जाती है अपने उस प्यारे प्रेमी की, और मिलन की सुखद घड़ियों की स्मृतियाँ पुनः उठ खड़ी होती हैं...तब तो वे पत्थर भी रो पड़ते हैं, उस अँधेरे में दो आँसू बहा बहा कर ठण्डी निश्वासें भरते हैं।

उस अनन्तयौवना की लाड़ली का वह उल्लास, उसकी वह विलासिता, उसका वह यौवन, तथा उसकी वह मस्ती...सब कुछ नष्ट हो गए..., परन्तु उसकी वह चिरसुख-भावना, पुनः मिलन की वह अक्षय आस,...प्रियतम की वह याद...आह! आज भी वह कंकाल रोता है, निश्वासें भरता है, और जब कभी नाश का कुल्हाड़ा चलता है तो सिसकता है, और कराह कराह कर अस्फुट ध्वनि में विवशता भरी आवाज़ में प्रार्थना करता है:—

"कागा सब तन खाइयो,
चुन चुन खइयो मांस।
दो नैना मत खाइयो,
पिया मिलन की आस।"

———